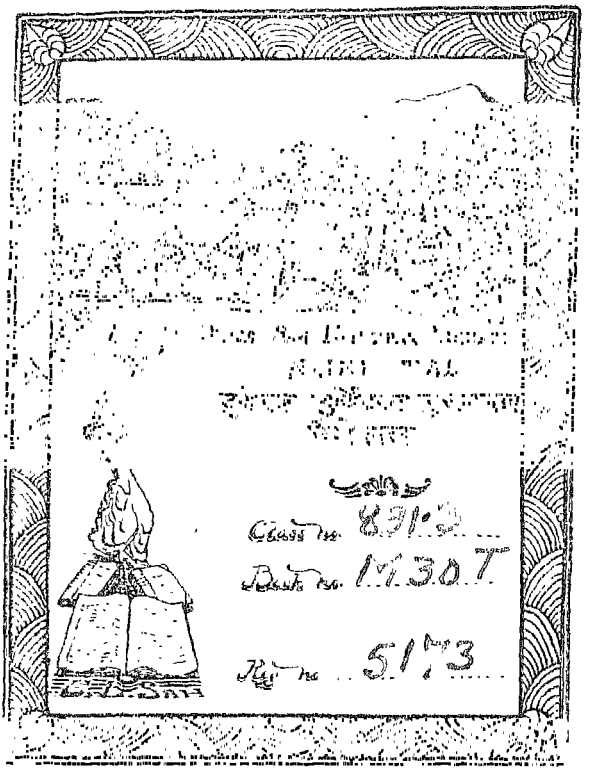
Class no. 891.2
Book no. M30T
Acc no. 5173

तलवार की छाया

कुँअर माधवसिंह 'दीपक'
एम. ए.

शारदा मन्दिर
नई सड़क, दिल्ली

शारदा मन्दिर
प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता
नई सड़क, दिल्ली

Durga Sah Municipal Library,
NAINITAL.
दुर्गासाह म्युनिसिपल लाइब्रेरी
नैनीताल
Class No. ...891.3.....
Book No. ...M130T.....
Received on ...24-1-61.

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम बार ११००
मूल्य ३)

हिन्द कम्पोजिंग एजेन्सी
बाजार सीता राम, लाल दरवाजा
प्रकाश प्रेस दिल्ली

दो शब्द

इतिहास को उपन्यास बनाना कठिन है। किन्तु कोई सत्य कल्पना से भी अधिक मीठा होता है। हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों का अभाव है और जो है उन में सत्य कम है कल्पना अधिक। भारतीय इतिहास में इतिहासकार बहुत कम हुए हैं क्योंकि इस देश में सत्य का ढोल पीट कर भी हम जीवन में सत्य को कम अपनाते हैं, और फिर साहित्यकार तो कल्पना जगत का प्राणी ठहरा। यथार्थ की चट्टान से टकराने का बहुत कम लोग साहस करते हैं क्योंकि यथार्थ मानव को झिंझोड़ देता है और कभी-कभी प्रेत की तरह नग्न और वीभत्स रूप में हमारे सामने आ खड़ा होता है। प्राच्य की अपेक्षा पाश्चात्य साहित्यकारों ने इस प्रेत का अधिक सामना किया और जीवन की विषमताओं से भाग कर नहीं बल्कि उन्हें परास्त करते हुए साहित्य निर्माण किया। यही कारण है कि वे देश इतने आगे बढ़ गए और वहाँ विज्ञान ने अपने चमत्कार दिखाए। इधर हम स्वांतःसुखाय और आध्यात्मवाद और "हरे राम, हरे राम" में लगे रहे जिस के कारण इतिहास को सही रूप में समझना, उस के आधार पर अपने आप को भी सही रूप में समझना और अपने दोष दूर करते हुए उज्जवल भविष्य का निर्माण करना तो दूर रहा, हम अपनी संकीर्णताओं के जाल में ही उलझे रह गये और उन संकीर्णताओं के कारण अपने पूर्वजों को भी उसी विचारधारा की दूरबीन से देखने लगे। यदि हम

किसी हिन्दू से कहें कि गो मांस तो क्या नर मांस खाने तक के उदाहरण थे और अब भी है तो वह चिढ़ता है, बौखलाता है, जबकि पाश्चात्य देश का व्यक्ति इतिहास के सत्य को निष्कपट रूप से स्वीकार करता है। मानव सभ्यता एक दिन में नहीं बनी है। अनेक नृशंस कार्यों से मानव ने शिक्षा ली है और अब तक भी जो कुछ सीखा है, बहुत थोड़ा सीखा है।

युग विशेष के जीवन को ज्यों का त्यों अंकित कर देना ऐतिहासिक उपन्यास की कसौटी है। मैंने अपने पिछले उपन्यास "बोलती लहरें" में मध्ययुगीन राजस्थान का चित्रण किया है जिसे मेरे मित्रों ने काफी सफल घोषित किया है। प्रस्तुत पुस्तक में अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का चित्र है। राजस्थान का इतिहास मानव को महत्वाकांक्षी और कर्मशील बनाने के लिए एक आदर्श है। सैकड़ों पराक्रमी वीरों ने सैकड़ों वर्षों तक एक विशाल साम्राज्य से टक्कर ली।

कर्नल जेम्स टॉड पहला व्यक्ति था जिस ने राजस्थान का क्रमबद्ध इतिहास लिखा। उस के महान् कार्य से हम कभी उऋण नहीं हो सकते। अपनी श्रद्धा व्यक्त करने के लिए मैंने यह पुस्तक टॉड को भेंट की है। इतिहास के पृष्ठ पलटते समय मुझे एक पुरुष ऐसा विचित्र मिला जो अपने जीवन में नायक और खलनायक दोनों का पार्ट बड़ी खूबी से अदा करता था। एक ओर वह वीर नायक की भाँति बड़ी-बड़ी सेनायें सजाता था तो दूसरी ओर स्वार्थ सिद्धि के लिए नीच से नीच कर्म करने में भी नहीं चूकता था यानी दूसरे शब्दों में वह चन्द्रगुप्त और चाणक्य दोनों का काम अकेला कर सकता था। ऐसा विचित्र चरित्र है राजराणा जालिमसिंह का।

राजराणा जालिमसिंह (सन् १७४०–१८२४) अठारहवीं शताब्दी में भारतवर्ष के एक विशेष पुरुष हुए हैं। कर्नल टॉड ने उन्हें "नेस्टर" और "मेक्यावेली" की संज्ञा दी है। नेस्टर एक यूनानी योद्धा था।

ट्रॉय के युद्ध में हेलन को जीतने के लिए वह बड़ी-बड़ी सेनायें सजाता था। मेक्यावेली एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ हुआ है जो सफलता के लिये कोई भी काम करना उचित समझता था।

कोटा राज्य के प्रधान मंत्री राजराणा ज़ालिमसिंह झाला के वंश से मेरे पूर्वजों के परम्परागत सम्पर्क होने के कारण मुझे उन के बारे में दिलचस्पी होना स्वाभाविक था। प्रत्येक घर में कई बातें पीढ़ी दर पीढ़ी सुनाई जाती हैं। बहुत सी बातें मुझे अपने पिता महाराजा भीमसिंह जी से मालूम हुईं। औरों से भी क़िस्से सुन रक्खे थे। टॉड के 'राजस्थान' के अतिरिक्त डाक्टर मथुरालाल शर्मा कृत "कोटा राज्य का इतिहास" और महाकवि सूर्यमल्ल कृत "वंशभास्कर" से भी मुझे काफी सामग्री मिली है। मैं राजराणा के जीवन को इतिहास का पृष्ठभूमि ले कर उपन्यास के रूप में रख रहा हूँ।

आज का युग गद्य का युग है। लेखकों और पाठकों की प्रवृति सूक्ष्म से स्थूल की ओर है और यदि कोई गागर में सागर भरने की चेष्टा भी करता है तो उस की गागर को देखने का कोई कष्ट नहीं करता। पहली मुलाक़ात पर, या रेल की रात पर, या दो कौड़ी की बात पर आप को मोटे-मोटे उपन्यास मिल जायेंगे और उपन्यास जितना मोटा हो उतना ही अच्छा कहा जाता है क्योंकि प्रकाशक को पैसे जो अधिक मिलते हैं। चाहे उसे पढ़ कर आप हिन्दी को कितनी ही गालियाँ दें, वह तो अपना भूसा बेच ही देता है। हज़ारों मन भूसा बिक रहा है और यह केवल भारत में ही नहीं अन्य देशों में भी हो रहा है। जैसे अख़बार पढ़ कर लोग आराम से कूड़े में फेंक देते हैं वैसे ही उपन्यास भी अधिकतर लोग समय काटने के लिए, नींद लाने के लिए पढ़ते हैं। मैं अपनी कृतियाँ साहित्य बनाने के लिए तैयार करता हूँ। मुझे अपनी सफलता का भी कुछ आभास हो चला है।

राजस्थान में राजराणा ज़ालिमसिंह का नाम अब तक सम्मान से

लिया जाता है। इसी परम्परा को निभाने के लिए मैंने भी आदर सूचक प्रयोग किया है। 'वह' के स्थान पर 'वे' लिखा है। वे बड़े वीर और राजनीतिज्ञ थे। कोटे के सिंहासन पर उन्होंने पाँच राजा देखे थे। मेरे वंश की भी चार पीढ़ियां उन के आगे गुजरी जिन में महाराजा खुशहालसिंह जी और उन के पिता महाराजा गोवन्तसिंह जी क्रमशः सन् १७६१ और १७६८ ई० में भटवाड़े और उज्जैन के युद्धों में मारे गये। खुशहालसिंह जी के पुत्र हिन्दूसिंह जी और पौत्र छीतरसिंह जी को भी उन्होंने अपना मित्र और विश्वासपात्र बनाये रखा। महाराजा छीतरसिंह जी मेरे दादा महाराजा बलभद्रसिंह जी के दादा थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि राजराणा जालिमसिंह निकट अतीत के ही पुरुष थे। उन का निवास स्थान "झाला की हवेली" अब तक कोटे में मौजूद है। राजस्थान की गरम रेत में न जाने कितने वीरों का रक्त सूख गया। उस रेत पर चलने मे भी टॉड अपना सौभाग्य समझा करता था। आशा है यह पुस्तक पाठकों को रुचिकर लगेगी।

माधवसिंह 'दीपक'

कर्नल जेम्स टॉड की पुनीत स्मृति में

तलवार की छाया

पहला परिच्छेद

"कितनी तोपें ढल चुकीं महताब खाँ ?"

"पैंतीस !"

"काफी हैं। कल फौजकशी है। मय गोला-बारूद के सारा तोपखाना भटवाड़े के लिये रवाना हो जाये।"

"जो हुक्म !"

"जयपुर की फौज कूच बोल चुकी है।"

"मगर हुजूर ! क्या मराठे हमारी तरफ से नहीं लड़ रहे ?"

"नहीं। बड़े चालाक हैं। वे जंग को पैसे से तोलते हैं और हम अपनी इज्जत से। वे कहते हैं कि जयपुर और कोटा हमारे लिये एक जैसे हैं। हम तो दोनों का तमाशा देखेंगे और फतह के बाद जो खेमे तुम लूट लोगे वे तुम्हारे और जो हम लूट लें वे हमारे।"

"खुदा न करे, अगर हमारी शिकस्त हुई तो क्या उनका रुख हमारे तम्बुओं की तरफ होगा ?"

"जाहिर है" जालिमसिंह ने कहा।

"अल्ला, अल्ला। तो फिर उन्हें सिर्फ तमाशा दिखाने के लिये क्यों बुलाया जाये ?"

"नहीं महताब खां हमें फ़ायदा है। होल्कर का पड़ाव हमारी तरफ रहेगा और हम ने एलान कर दिया है कि वे हमारे तरफदार हैं। दुश्मन पर रौब ग़ालिब रहेगा। साँप अगर काटे नहीं, सिफ फन हिलाता रहे तब भी उस से डर लगता है।"

"बजा है। लेकिन हुज़ूर ! क्या हमारी पन्द्रह हज़ार फौज साठ हज़ार का मुक़ाबला कर सकेगी ?"

"बहुत मुश्किल है। वैसे हमारी तैयारी में कोई कसर नहीं है। जब दुश्मन चढ़ आया तो फिर मुकाबले पर आना हमारा फर्ज है। ईश्वर ने चाहा तो जीत हमारी ही होगी। क्यों खुशहालसिंह जी, आप का क्या ख़याल है ?"

"हार जीत का फैसला तलवार करेगी झाला जी। लेकिन एक बात निश्चित समझिये। या तो हम जीत कर आयेंगे या फिर हमारी लाश ही यहाँ लौट कर आयेगी।"

"शाबास ! जब ऐसे बहादुर हमारे साथ है तो फिर हमें किसी बात की फिक्र नहीं है" कह कर झालिमसिंह राजमहल चले गये। इक्कीस वर्ष की अवस्था में कोटा राज्य की समस्त सेना का भार उन के कंधों पर आ पड़ा था। पिता की मृत्यु के उपरान्त फौजदार का पद पुत्र को दिया गया था।

भटवाड़ा गांव के पास दोनों पक्ष की सेनायें आ डटीं। अच्छा खासा हरा-भरा मैदान था। बीच-बीच में कँटीली झाड़ियाँ थीं। सारे सैनिक कील-काँटे से तैयार हो कर मर मिटने के लिये मौजूद थे। हाथी, घोड़े, ऊँट, पैदल, तोपखाना सब पहुँचे हुए थे। दोनों फौजों के खेमे तने हुए थे।

सूर्योदय हुआ। राजपूतों ने अपनी मूँछें तानीं। पगड़ियाँ कसीं। कमरबंदें लपेटे। हथियार बाँधे। नक्कारे बजे, "कड़ान धीं धीं, कड़ाम धीं धीं"। रणभेरी में सिंधुराग बज उठा। घोड़े मेघगर्जन की भांति हिनहिनाने लगे। हाथियों ने चिंघाड़ मार कर अपनी सूँडें ऊपर उठाईं। ऊँट बलबलाये और बड़े-बड़े झाग बाहर निकालने लगे। "जय महाकाली" "जय भवानी" के रणघोष से आसमान गूँज उठा। महताबें टपकने लगीं। गोलन्दाजों ने पैंतरा बदल कर तोपें दाग़ दीं और तोपों के गगनभेदी स्वर के साथ युद्ध आरम्भ हो गया।

सब से पहले जयपुर के रिसाले ने हमला बोला। घोड़े एक साथ दौड़े। पचरंगी ध्वजा फड़फड़ाती हुई आगे बढ़ने लगी। बात की बात में कछवाहे चारों तरफ छा गये। किन्तु वीर हाड़ा अपने स्थान से हिलने वाले न थे। "गाढो टलै पण हाड़ो नँह टलै"। भालों से भाले टकराये। कोटे की ओर से पलायता, खेड़ली, खातोली, कुनाड़ी, कोयला, अणता, गैंता, पीपाखेड़ी, आँतरदा आदि ठिकानों के जागीरदारों ने मियान से तलवारें सूँती और उधर जयपुर की ओर से ईसरदा, बातका, माचेड़ी, झलाय, बढ़, बारोल और अचरोल के ठाकुर खंग खींच कर लपके। तलवार से तलवार बजने लगी। पैदलों से पैदल भिड़ गये और घुड़सवारों से घुड़सवार। जम्बूरचियों ने ऊँटों पर से जम्बूर चलाने शुरू किये। हाथियों ने चिंघाड़ते हुए अपने भारी पाँव आगे बढ़ाये और उनके पीछे आत्मरक्षा करते हुए सिपाही भी आगे बढ़े। मार काट होने लगी। खोपड़ियाँ फूटने लगीं। रक्त बहने लगा। घाव रिसने लगे। तलवारों से खून टपकने लगा। तोपों की गरज के साथ धुएँ के बादल उडने लगे। बारूद के धक्कों से उनके पहिये चर-मराने लगे। रेल-पेल मच गई। इधर के आदमी उधर निकल गये और उधर के इधर।

महावत ज़ोर से चिल्लाकर अंकुश मारने लगे और हाथी सेना का

रौंदने लगे। किन्तु कुछ देर में कोटे के दीवान अखैराम कायस्थ का हिम्मत पस्त होने लगी और उनने घबराकर जालिमसिंह से कहा—"बोलो झाला जी, संधि कर लें क्या ?"

"कैसी बातें करते हो अखैराम जी ? हम लोग आखिरी दम तक लड़ेंगे। संधि का तो कोई सवाल ही पैदा नहीं होता।"

"तो फिर सेना को आप संभालो। यह काम मेरे बस का नहीं है। फिर यह न कहना कि कायस्थ ने मरवा दिया सब को।"

"चिन्ता न करो" झाला ने कहा—"मैं आगे बढ़ता हूँ। आप जाकर होल्कर को सँभालो। कहीं वह न पलट जाये। मैं इधर देखता हूँ।"

जयपुर का हमला रोक कर कोटे ने अपनी फौज बढ़ाई। वीर जूझने लगे। मुण्ड कटने लगे। भाले देह को छेदने लगे। हजारों योद्धा धराशायी हो गये। लड़ते-लड़ते दोपहर हो गई। हार-जीत नज़र नहीं आती थी। किन्तु जयपुर की चौगुनी सेना से जीतना हँसी खेल नहीं था। झाला ने देखा कि यदि इसी तरह लड़ते रहे तो काम नहीं चलेगा। नज़र बचाकर वे मल्हार राव होल्कर के तम्बू में जा घुसे और हाथ जोड़ कर बोले—"दादा। हमारी मौत और जिन्दगी इस वक्त आप के हाथ में है। हम आप के ताबेदार हैं। इस मौके पर अगर आपकी सेना जाकर जयपुर के खेमे लूट ले तो वह सारा माल आप का और उसके अलावा हम चार लाख रुपया नक़द आप की भेंट करेंगे। उठिये दादा, अब देर न करिये।"

होल्कर बहुत खुश हुआ। मराठे पिल पड़े जयपुर के तम्बुओं पर। आगे से कोटे की सेना ने घर दबाया। पीछे हथियार लुट रहे थे, गोला बारूद छीना जा रहा था, खच्चरों पर माल लादा जा रहा था, तम्बुओं की रस्सियाँ काटी जा रही थीं। पहनने क कपड़े तक मराठों ने टट्टुओं पर बाँध लिये।

युद्धस्थल में जालिम ने अपनी सेना को ललकारा—"बहादुरो! आगे बढ़ो। मराठे हमारे साथ आ गये हैं। दुश्मन के पाँव उखड़ चुके है। काट डालो इनकी गर्दनें। सारा मैदान साफ कर दो।" हाड़ों ने दुगनी गति से असि संचालन आरम्भ किया। जयपुर के बड़े-बड़े जागीरदार जान बचाने के लिये भाग खड़े हुए और उनके पीछे उनके हिमायती भी लम्बे हो गये। पचरंगी ध्वजा छिन गई। नक्कारे फूट कर नीचे जा पड़े। बिना झण्डे के ही फौज भागी। किसी के जूते रकाब में से निकल पड़े। किसी की पगड़ी लम्बी हो गई। भागती सेना का विजयी सेना ने पीछा किया। बीच में एक नदी आई जिसमें कीचड़ ही कीचड़ था। कछवाड़ो के घोड़े कीचड़ में बुरे फँसे। किन्तु उनके पास पहुँचना भी अपने आप को फँसाना था। जो आस-पास थे उन्हें लूट-लाट कर कीचड़ में ही चित्त कर दिया गया और जो दूर थ उन्हें पत्थरों और गालियों की बौछार सहनी पड़ी। राम राम करके कुछ लोग पगड़ियाँ, साफे लम्बे करते हुए एक दूसरे को खींच खाँच कर बाहर निकले और उसके बाद जयपुर की सेना ऐसी भागी कि फिर कभी कोटे से युद्ध करने नहीं आई। 'रंग एक रंग चढ्यो रंगपचरंग को (अर्थात् रंग (युद्ध) में एक ही रंग चढ़ा--पाँच रंग न रहे, यानी जयपुर के पचरंगे झण्डे पर रुधिर का लाल रंग चढ़ गया।) विजयी वीरों के स्वागत में स्त्रियों ने उनकी आरती उतारी, मंगल गीत गाये, खुशियाँ मनाईं। तलवार चलाते-चलाते जालिमसिंह के दाहिने हाथ की मुट्ठी इतनी सख्त हो चुकी थी कि काफी देर तक उनकी उँगलियाँ सीधी नहीं हुईं और तलवार हाथ से नहीं छूटा।

दूसरा परिच्छेद

कुछ समय बाद कोटा नगर में मातम छा गया। महाराव छत्रसाल कुछ दिन बीमार रह कर स्वर्ग सिधार गये। रनिवास में हाहाकार मच गया। रानियों ने चूड़ियाँ फोड़ डालीं। दासियाँ गला फाड़-फाड़ कर रोने लगीं। प्रातः काल अंतिम यात्रा आरम्भ हुई। विमान निकला। सब के मुँह उतरे हुए थे। सबके सिर पर सफेद पगड़ियाँ थीं। हाथियों पर झूल नहीं थी। निशान उल्टे थे। दिन में मशालें जल रही थीं। दाह संस्कार हुआ। अंतिम सम्मान के लिए तोपें चलीं। धू धू करती चिता जल उठी। छोटे बड़े सब लोगों ने सिर मुड़ाये, स्नान किये और घर लौट आये।

महाराव छत्रसाल के कोई संतान न होने के कारण राजसिंहासन पर उनके भाई महाराव गुमानसिंह बैठे जिन का विवाह जालिमसिंह की बहिन से हुआ था। भटवाड़ा विजय के उपरान्त युवक जालिम का रोब दोब बहुत बढ़ गया था। जिधर वे देखते उधर लोगों की नजरें झुक जातीं। उनकी मूँछें हमेशा तनी रहती थीं। बहिन से

भेंट करने के लिए रनिवास जाने से ज़ालिम को कौन रोक सकता था चुनी हुई चतुर दासियाँ उन्हें महिलों की सारी गतिविधियों की सूचना देने लगीं। ज़ालिम की आँखों में राजमहल की रंगीनियों के स्वप्न उतरने लगे। रेशमी वस्त्रों में दासियों का यौवन और सौन्दर्य फूट पड़ता था जैसे स्वर्ण लतिकायें पवन के झकोरों से इधर-उधर झूलती फिरती हों। आभूषणों की आभा और इत्रों की सुगन्ध से शरीर में रोमांच होने लगता था।

शासन और ऐश्वर्य की लिप्सा मनुष्य को क्या से क्या बना देती है। उनके पास सब कुछ था। धन, यौवन, शासन, अधिकार। सारी सत्ता उनके हाथ में थी। गुप्तचर उन्हीं के चर थे। मदालसा सी मनोहारिणी जिस नवोढ़ा दासी पर राजा की कृपा है यदि वही उनकी सेज पर न आई तो फिर क्या लाभ है इस सारे ऐश्वर्य का—इस शासन, अधिकार और समस्त सत्ता का। धीरे-धीरे कानाफूसी होने लगी। कहाँ बेचारी क्रीड़ापुत्तलिका क्रीतदासी मयूरी और कहाँ तलवार बाँधे हुए, मूँछ ताने हुए, प्रधान सेनापति ज़ालिमसिंह—भटवाड़े के यशस्वी विजेता—जिनकी तलवार का लोहा सारा राजस्थान मान चुका था।

किन्तु, नारी का सौन्दर्य कहीं अधिक बलशाली होता है। बड़े-बड़े सम्राट् झुक जाते हैं। और विधाता भी कभी-कभी ऐसे निर्धन और निर्बल स्थान पर अटूट सौन्दर्य भर देता है कि उसे अपने वश में करके कठपुतली की तरह नचाने के लिए बड़े-बड़े मनीषियों का मन मचल उठता है। सौन्दर्य का आकर्षण विश्वामित्र भी न रोक पाये। बड़े-बड़े महात्मा और बड़े-बड़े सूरमा नारी से परास्त हो गये। सौन्दर्य नारी का सब से बड़ा बल है किन्तु अबला और असहाय को प्राप्त होकर कभी-कभी यही बल उसके प्राण ले बैठता है। न जाने कितनी सुन्दरियाँ संसार में बलात्कार से मरी होंगी। न जाने कितनी

सुन्दरियों ने आत्म हत्या की होगी, जौहर की आग में कूदी होंगी, गंगा के प्रवाह में बही होंगी। शक्तिशाली और क्रूर पुरुषों के हाथ में पड़ कर न जाने कितनी सुन्दरियों ने अपने शरीर को बेच दिया। उन्होंने जैसा नाच नचाया वैसा नाचा। फिर एक दासी की क्या मजाल जो वह उफ़ करे। उसकी हड्डियों का पता लगना मुश्किल हो जाये। फ़ारस में किसी समय बादशाह का कोप भाजन बनी हुई दासियों को एक ऊँची मीनार से गिराया जाता था। दक्षिण भारत में देवदासियों को रात-रात भर नचाया जाता था। इतिहास में ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं।

धीरे-धीरे जालिम का रनिवास में आना जाना लोगों की आँखों में खटकने लगा। बहाना अपनी बहिन से मिलने का होता था किन्तु बहिन स्वयं अपने भाई की सौन्दर्य लिप्सा से बहुत अप्रसन्न थी। दासियाँ जलन के मारे कानाफूसी करती थीं। एक दूसरे की चुगली खाना, आपस में लड़ाना, दूती बनकर जाना, इनाम माँगना, पाँव दबाना—यही दासियों के मुख्य कर्म होते हैं। रजवाड़ों के रनिवास किसी समय बाँदियों खवासों, पातरियों और छोकरियों से भरे रहते थे। राजपूतों के ह्रास में दासियों का सक्रिय सहयोग रहा है।

प्रधान मंत्री अखैराम कायस्थ एक कालरात्रि को यमराज के घर पहुँचा दिये गए थे जहाँ उनके पूर्वज चित्रगुप्त ने उनका काफी सम्मान किया होगा। भोजन के साथ पापड़ और रायते का कुल्हड़ जरूर आया होगा। अखैराम के अवसान के बाद जालिमसिंह का प्रभुत्व और साहस अधिक बढ़ गया। जिधर वे निकलते उधर सन्नाटा छा जाता।

एक दिन संध्या को जालिमसिंह रनिवास पहुँचे। कुछ दीप जल रहे थे, कुछ अंधेरा था। धीरे-धीरे वे अपने क़दम आगे बढ़ा रहे थे मानो आग पर पाँव धर रहे हों। सेनानी अपनी स्वाभाविक सतर्कत

से आगे बढ़ रहा था। किन्तु एक कमरे में घुसने की देर थी कि सहसा आवाज़ आई "ख़बरदार" और ज़ालिम ने अपने आपको चारों ओर तलवारों से घिरा हुआ पाया। पैरों को नीचे से ज़मीन खिसक गई। अनेक दासियाँ नंगी तलवारें लिए उनके चारों ओर खड़ी थीं। लोहे की चमक में मानो उनकी मौत हंस रही थी। कोमलांगी स्त्रियों की प्यार भरी बस्ती में ऐसे घातक शस्त्रों से वे सहसा घिर जायेंगे ऐसी उन्हें आशा नहीं थी। किन्तु सेनापति के होश अपने क़ाबू में थे। दासियों की प्रत्येक मनोवृत्ति से वे भली भाँति परिचित थे। एकाएक आगे बढ़कर हमला करने की हिम्मत अभी किसी दासी को नहीं हुई थी। ज़ालिम तुरन्त छाती तानकर बोले—"अब तुम सब मिलकर मुझे मार तो दोगी ही। मैं थोड़ी देर का मेहमान हूँ। लेकिन देखो, अगर मैं इतनी जल्दी मर गया तो दुनियाँ में किसी को पता नहीं चलेगा कि मैंने इस महल में क्या-क्या खेल खेले हैं। किस किस से प्रेम किया है, किस किस को इनाम दिया है, किस किस के साथ रात काटी है। ये बातें पहले सुन लो। फिर भले ही मुझे मार देना क्योंकि अब तुम्हारे हाथ में तो मैं पड़ ही चुका हूँ।" यह कहकर वे नीचे बैठ गये जैसे रोटी खाने बैठे हों। प्रेम और इनाम के नाम से बाँदियों के मुँह में पानी भर आया। एक ने अकड़ कर कहा—"अच्छा, जल्दी से बताओ और मरने के लिए तैयार हो जाओ।"

कहानी शुरू हुई। "मैंने पहली रात इस महल में कैसे काटी इसका हाल पहले सुनो। इतना आनन्द जीवन की किसी रात में नहीं आया। सावन का महीना था। बादल घुमड़ रहे थे। बिजली चमक रही थी। इसी कमरे में चाँदी के पायों का एक सुन्दर पलंग बिछा हुआ था। मखमल की सेज पर ताजे फूलों की पंखड़ियाँ बिखरी हुई थीं। सिरहाने से गुलाब के इत्र की सुगन्ध आ रही थी। खिड़की में केसर कस्तूरी की मदिरा धरी हुई थी। मन्द-मन्द हवा बह रही थी। हल्की-हल्की बूँदें टपक रही थीं।" चतुर राजनीतिज्ञ अपनी बात को

जान बूझकर लम्बी बना रहे थे। तलवारें चारों ओर अब भी चमक रही थीं किन्तु कोमल कलाइयाँ कुछ ढीली पड़ गई थीं। घेरे से बाहर कूदकर तलवार मियान से खींचने के लिए जालिमसिंह ठीक अवसर ढूँढ रहे थे। उन्हें आशा थी कि उनके विश्वस्त अनुचरों को यदि इस षड्यंत्र का पता लग गया होगा तो वह तुरन्त रक्षा का उपाय कर रहे होंगे।

कहानी जारी रही "रात का दूसरा प्रहर था। मैंने अपना अँगरखा खोला, पगड़ी उतारी, जूते उतारे, तलवार कोने में रक्खी और पलंग पर आकर बैठा ही था कि सहसा पायल की धीमी धीमी आवाज़ आई··· "झनझन, झनझन, झनझन" और मैंने एक सुन्दरी को आते हुए देखा।"

"कौन थी वह औरत" एक दासी ने आतुर होकर पूछा।

"मयूरी——??"

ऐन मौक़े पर मयूरी आ पहुँची थी। अपनी बड़ी बड़ी आँखों को लाल लाल करती हुई क्रोध के वास्तविक अभिनय में मयूरी तमक कर बोली—"झाला जी, आप यहाँ कैसे ? किसने इजाज़त दी आपको यहाँ आने की ? चले जाइये यहाँ से। फौरन चले जाइये। आपको पता नहीं, महाराज मेरे लिए अभी इधर पधार रहे हैं।"

महाराज का नाम सुनते ही दासियाँ सहमीं। आँचल संभालने ही लगी थीं कि जालिमसिंह बिजली की तरह तड़प कर बाहर हो गये। साफ बच गये। एक तलवार भी उन पर न गिरी। दासियाँ अपनी स्त्रीजन्य कोमलता और भीरुता पर हाथ मलती रह गईं और मयूरी अपनी जीत पर अकड़ती हुई चली गई।

× × ×

काका स्वरूपसिंह जी, आखिर हम कब तक जालिमसिंह की हरकतें बर्दाश्त करते रहें। वे हमारे साले क्या है, आपने आपको हमसे

बड़ा समझते हैं। क्या हम कठपुतली हैं जो उनके इशारों पर नाचते रहें ? यह असंभव है। हम राजा हैं और वे हमारे नौकर। हमारी ही बिल्ली और हम से ही म्याऊँ। ये बातें अब हरगिज़ बर्दाश्त नहीं की जा सकतीं। जाओ, कह दो झाला से कि चलें जायें हमारे राज्य के बाहर। अब हम उन्हें एक दिन भी यहाँ नहीं देख सकते। उनकी जागीर और जायदाद सब ज़ब्त कर ली जाये।"

"जो हुक्म।"

ज़ालिम पर मानो पहाड़ गिर पड़ा। करम ठोंक कर बैठ गये। एक ही क्षण में जागीर, हुकूमत, मकान, जायदाद सब कुछ छिन गया। केवल तलवार हाथ में रह गई। किन्तु तलवार ही राजपूत की सबसे बड़ी दौलत है। उनकी पत्नी सीसोदिनी उन्हें सांत्वना देती हुई बोली— "मैंने कितनी बार समझाया था कि मुँह मत लगाओ उस बाँदी को। मगर मेरी सुनता कौन है। आप अपने आगे किसी की नहीं चलने देते। भला ये बाँदियाँ भी किसी की सगी हुई हैं ?"

"क्यों नहीं ? कल अगर मयूरी नहीं होती तो क्या मैं जिन्दा बच सकता था ?"

"तो फिर अब क्यों नहीं जाकर उसके पाँव पड़ते हो ? जाओ, वही आप की रक्षा करेगी। वही आपके देस निकाले को रुकवा सकती है" रजपूतन ने तीखे स्वरों में कहा।

"यह मेरी इज्ज़त का सवाल है सक्तावत जी। राजपूत टूट जाता है मगर झुकता नहीं है। मैं चाहूँ तो अभी अपनी बहिन से कह कर यह हुक्म वापस करा सकता हूँ। मैं चाहूँ तो राजा से जाकर मुआफ़ी माँग सकता हूँ। लेकिन ज़ालिमसिंह जिन्दा रहते इस तरह कभी नहा गिड़गिड़ा सकता। तुम नहीं जानती कि स्त्री की भाँति पुरुष भी ईर्ष्या रख सकता है और पुरुष की ईर्ष्या बहुत भयंकर हुआ करती है।

खून की नदियाँ बह जाती हैं मगर यह ईर्ष्या शान्त नहीं होती। बस, अब विदा। कोटे से हमेशा के लिए विदा। अपनी जन्मभूमि से दूर चला जाऊँगा।" उनका चेहरा अपमान और तदजन्य रोष के कारण तमतमा रहा था।

"कहाँ चलोगे" पत्नी ने आँसू भर कर कहा।

"तुम्हारे घर। मेवाड़। पहले तुम्हें घर छोड़ दूँ फिर मैं निश्चिन्त हो जाऊँगा। बस, फिर मेरे पास मेरा घोड़ा रहेगा और मेरी तलवार!"

जालिमसिंह का विवाह मेवाड़ के सक्तावत सीसोदियों में हुआ था। कोटे से निर्वासित होकर वे उदयपुर पहुँचे। वहाँ चूँडावतों और सक्तावतों की कलह दीर्घ काल से चली आ रही थी। दोनों वंश के जागीरदार मेवाड़ में अपना प्रभुत्व बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे थे। यदि चूँडावतों की शक्ति बढ़ती थी तो वे सक्तावतों को दबाते थ और सक्तावत आगे बढ़ते थे तो चूँडावतों को कुचलते थे। महाराणा अरिसिंह (अड़सी) स्वयं अपने स्थान को सुरक्षित नहीं समझ रहे थे।

जिस समय जालिमसिंह उदयपुर पहुँचे उस समय चूँडावतों ने आपस की साँठ गाँठ से अपनी शक्ति अधिक बढ़ा ली थी और वे जनता पर आंतक जमा रहे थे। झाला ने अपने सुसराल वालों का यानी सक्तावतों का पक्ष लिया। चूँडावतों का दमन करने के लिए महाराणा स्वयं सक्तावतों के गुट में थे। ज़ालिम भी उसी गुट में मिल गये।

भटवाड़े के युद्ध के बाद उनके यश का डंका सारे राजस्थान में बज चुका था। मेवाड़ के मंच पर ज़ालिम के पदार्पण से महाराणा बहुत प्रसन्न हुए। सूचना मिलते ही उन्हें बुलवाया और उनके उपस्थित होने पर महाराणा ने कहा—"आइये झाला जी, मेवाड़ में आपका स्वागत है। आप हमारे सबसे बड़े साथी सिद्ध होंगे। जिस प्रकार

महाराणा प्रताप की सेवा हल्दीघाटी में मानसिंह जी झाला न की थी, उसी प्रकार हमें आप से भी यही विश्वास है कि मेवाड़ के राजमुकुट की रक्षा के लिए आप भी अपना सर्वस्व लगा देंगे।"

"आपकी शरण में आया हूँ महाराणा साहिब। आपकी सेवा में कोई कसर नहीं रखूँगा।"

"बस, राजपूत कर इतना कहना काफी है। हमें आपकी बात पर पूरा भरोसा है। हम आपको चीताखेड़े जागीर देते हैं और आज से आप "राजराणा" कहलायेंगे।"

"मैं आपका बहुत आभारी हूँ महाराणा साहिब। इस मुसीबत के मौक़ पर आपने मुझ पर जो अहसान किया है उसे मैं जिन्दगी भर नहीं भूल सकता। वक्त पड़ने पर अपने खून की एक-एक बूँद से मैं इस इज्जत की क़ीमत चुका दूँगा।"

कुछ ही दिनों में राजराणा जालिमसिंह ने अपनी राजनीति से सारे मेवाड़ को चकित कर दिया। अपना पक्ष दृढ़ करने के लिए वे जी जान से जुट गये। अनेक जागीरदार चूँडावतों का पक्ष छोड़कर महाराणा से मिलने लगे। किन्तु एक राणावत सरदार अब तक महाराणा बनने का स्वप्न देख रहा था और वह था रत्नसिंह। वह अपने आपको महाराणा राजसिंह द्वितीय का पुत्र कहता था। चूँडावत उसी के पक्षपाती थे। वस्तुतः महाराणा अरिसिंह (अड़सी) अपने भतीजे महाराणा राजसिंह (द्वितीय) का वध करके ही मेवाड़ की गद्दी पर बैठे थे। अड़सी स्वभाव से बहुत चिड़चिड़े और क्रोधी थे। अतः अनेक राजपूत सरदार उनसे अप्रसन्न थे। किन्तु जालिम ने अड़सी का पक्ष नहीं छोड़ा।

इधर नकली महाराणा रत्नसिंह ने अपना पक्ष निर्बल जानकर माधोजी सिंधिया से मैत्री की। चित्तौड़ उस समय चूँडावतों के

अधिकार में था और सिंधिया की सहायता से रत्नसिंह मेवाड़ का तख्ता उलट सकता था। चतुर सिंधिया मेवाड़ में घुसने की ताक में था। रत्नसिंह ने उससे वायदा किया कि यदि सिंधिया उसे महाराणा बनवा देगा तो इसके बदले वह उसे १ करोड़ २५ लाख रुपये देगा। मेवाड़ के राजमुकुट का मूल्य उस समय भी एक करोड़ से अधिक ही था। सिंधिया ने राज़ी होकर अपनी विशाल सेना मेवाड़ की ओर मोड़ने की तैयारी की। मेवाड़ के देवगढ़, सादड़ी, देलवाड़ा, बेदला और कान्होर के सरदारों ने रत्नसिंह का साथ दिया।

इन परिस्थितियों से ज़ालिमसिंह अनभिज्ञ न थे। वे अपना पक्ष दृढ़ करने में लगे हुए थे। सिंधिया और रत्नसिंह की संधि का हाल सुनकर ज़ालिमसिंह ने सलूम्बर पति प्रधान चूँडावत सरदार भीमसिंह से मिलने का निश्चय किया और घोड़े पर चढ़ कर सलूम्बर जा पहुँचे। गले मिल कर बोले—"चूँडावत जी। इस समय मेवाड़ के ऊपर काले बादल छाये हुए हैं। हम चाहे आपस में लड़ लें लेकिन बाहर वालों के आधीन रहना हम कभी बर्दाश्त नहीं कर सकते। यदि सिंधिया की फौज चढ़ आई तो पवित्र मेवाड़ भूमि शमशान बन जायेगी। इस समय आपस की कलह छोड़ो और एक हो जाओ। हमारी इज़्ज़त आपकी इज़्ज़त है। प्रतापी चंड के नाम को न भूलो। जिस समय राठौड़ों का मेवाड़ पर बोलबाला था उस समय आप के पूर्वज महाराज चंड ने ही मेवाड़ की रक्षा की थी। शत्रु का सामना करने के लिए हमारे साथ युद्ध में चलिए। मेवाड़ की रक्षा इस समय आप के हाथ में है।"

"झाला सरदार" भीमसिंह ने अविश में खड़े हो कर कहा—"जन्म भूमि मेवाड़ की लाज बचाने के लिए हमारी पच्चीस पीढ़ियाँ युद्ध में कट चुकी हैं और आप हमें शिक्षा देने आये हैं। मेवाड़ की रक्षा के लिये हमारी तलवार हमेशा सबसे आगे चली है। शत्रु बढ़ आयें और

हम देखते रहें, यह कैसे हो सकता है। चलिये, हम चूँडावत आप के साथ हैं। लेकिन हरावल का हक़ हमारा रहे, सक्तावतों का नहीं।"

"मंजूर है।"

हरावल के लिए यानी फौज में सबसे आगे रहने के लिये चूँडावतों और सक्तावतों का एक बार बहुत पहले झगड़ा हो चुका था। सलूम्बर का सरदार उस समय केवल दस वर्ष का लड़का था। मौक़ा देख कर सक्तावतों ने हरावल में रहने के लिये अपना ज़ोर लगाया और महाराणा से कहा कि वह बच्चा आगे रहकर क्या लड़ेगा, हमें आगे रहने दीजिये। इस झगड़े को खत्म करने के लिये महाराणा ने निश्चय किया कि एक समीपवर्ती दुर्ग को जीत कर जो पहले उसमें घुसेंगे उन्हें हरावल में रखा जायेगा। चूँडावत की माँ ने जब यह हाल सुना तो आग बबूला हो गई। अपने सरदारों को बुलाकर उसने अपना पुत्र उनके आगे खड़ा किया और बोली—"मेरा बालक छोटा है पर सलूम्बर का घर छोटा थोड़े ही है। जब किले के पास पहुँचो तो इसका सिर काट कर दुर्ग में फेंक देना।"

तदनुसार चूँडावत का कटा हुआ सिर दुर्ग में पहले पहुँचा और हरावल का हक़ चूँडावतों का ही बना रहा।

× × ×

सिंधिया की फौज का पड़ाव उज्जैन के समीप क्षिप्रा नदी के किनारे पड़ा हुआ था। क्षिप्रा अपनी क्षिप्र गति से कलकल निनाद करती हुई बही जा रही थी—वही क्षिप्रा, जिसके किनारे किसी समय महाकवि कालिदास घूमा करते थे। सूर्य कुछ ऊपर चढ़ आया था। कुछ धोबी सवेरे जल्दी ही कपड़े धोने आ पहुँचे थे। कुछ नर नारी स्नान कर रहे थे। कुछ भगवान् भास्कर को अर्घ्य चढ़ा रहे थे। अनेक उज्जैनवासी महाकाल के दर्शन करने आ रहे थे और जा रहे थे।

सहसा नक्क़ारे बज उठे। "एकलिंग जी की जय", "हर हर महादेव" के सिंहनाद ने आकाश गूँज उठा। बीस हज़ार पैदल, सात

हज़ार घुड़सवार और सौ हाथियों को लेकर ज़ालिमसिंह झंडा लिये हुए आ पहुँचे। महाराणा अड़सी का राजमुकुट और हाथी पर सोने का हौदा सूर्य की किरणों से खूब चमक रहा था और उस समय वस्तुतः सूर्यवंशी लग रहे थे। चूँडावत भीमसिंह और ज़ालिमसिंह सेना में सबसे आगे थे। घोड़ों की टापों से धरती हिल उठी। "महाराणा की जय" के साथ मेवाड़ी सेना ने आक्रमण किया।

किन्तु सिंधिया डरने वाला न था। बात की बात में मराठे राजपूतों से गुथ गये। माधो जी की विशाल सेना महासागर की प्रलयकारी हिलोर की भाँति उठ खड़ी हुई। तोपें गरजने लगीं। "मारो-मारो" का स्वर आसमान में गूँजने लगा। सिंधिया और रत्नसिंह की अदम्य वीरता दर्शनीय थी। तोपों के धुएँ के बड़े-बड़े बादल उठने लगे। बारूद की गंध से वायुमण्डल भर गया। चारों ओर रौद्र रस उत्पन्न हो गया।

ज़ालिमसिंह बड़ी तेज़ी से शत्रु सेना को चीरते हुए आगे बढ़ रहे थे और उनके पीछे मेवाड़ी वीर शत्रु रूपी चट्टानों को काटते हुए गिरि तरंगिनी की भाँति टूट कर पड़ रहे थे। झाला की तलवार ने विकराल रूप धारण कर लिया। उससे लाल-लाल लोहू टपक रहा था। शोणित की धारा क्षिप्रा से जा मिली और नदी का रंग लाल हो गया। सिंधिया ने देखा कि राजपूतों की बाढ़ को रोकना कठिन है। अतः उसने सेना को तुरन्त प्रस्थान का आदेश दे दिया। मेवाड़ी फूले न समाये। "एकलिंग जी की जय" बोलते हुए वे खुशी से उछलने लगे और प्रसन्नता से अपनी तलवारें और भाले हवा में घुमाने लगे। घोड़ों की पीठ थपथपाई गई। घायलों के पट्टियाँ बाँधी गईं। खुशियाँ मनाई जाने लगीं। शराब की प्यालियाँ घूमने लगीं। हुक्के गुड़गुड़ने लगे। मूछों पर ताव चढ़ने लगे। दाढ़ियाँ हवा में फहराने लगीं। कसे हुए कमरबन्दे खोल दिये गये। परतले उतार कर तलवारें बगल में रख दी गईं।

विजयोन्मत्त राजपूत भूल गए कि मराठे पहाड़ी चूहे होते हैं। पहाड़ तक को छेद देते हैं। सिंधिया हारकर जाने वाला न था। अपनी सेना को थोड़ी दूर ले जा कर वह रुका। क्रोध से उसके नथुने फूले हुए थे और चोट खाये हुए साँप की तरह फुंकारता हुआ वह अपनी फौज में घूमने लगा। अपनी सेना को उसने पुनः प्रोत्साहित किया, घुड़सवारों को, पैदलों को, तोपचियों को, सब को तैयार किया। तीन घंटे तक विश्राम लेकर सेना सजधज कर चल पड़ी।

इधर राजपूत अफीम घोल रहे थे। एक बूढ़े अफीमची ने अपने नौजवान साथियों को उपदेश देते हुए एक दोहा पढ़ा—

अमल छते उघरी नहीं, घरी पलक अरु जाम।
अखियाँ अमल तगीर की, अब उघरीं किहि काम॥

इस दोहे को सुन कर जालिमसिंह चौंके। इतने ही में सहसा रणसिंगा बज उठा। काली घटा की तरह मराठे राजपूतों के तम्बुओं पर बरस पड़े।

"बहुत बुरे फँसे। चूँडावत! यह मौत का फन्दा है" जालिमसिंह ने कहा।

"फँसे क्या हैं" चूँडावत बोला—"जब तक तलवार हाथ में है, लड़ेंगे" कह कर वह शत्रुओं पर टूट पड़ा।

सिपाही फिर एक दूसरे से भिड़ गए। हाथियों ने फिर चिंघाड़ मारी और घोड़े फिर हिनहिना कर दौड़ने लगे। सिंधिया की फौज में फ्राँसीसी गोलन्दाज तेजी से तोपें दाग रहे थे। तोप से तोप का निशाना लगा कर उन्होंने मेवाड़ का तोपखाना नष्ट कर दिया। राजपूतों के झुंड [साफ] होने लगे। शाहपुरा, बनेड़ा और सलूम्बर का चूँडावत सरदार लड़ते-लड़ते काम आए। रत्नसिंह और अरिसिंह का युद्ध दर्शनीय था। महाराणा से महाराणा लड़ रहे थे। खून से खून लड़ रहा था मानो प्रताप से शक्ता लड़ रहा हो। तलवारें सीं-सीं

कर रही थीं। दोनों दलों की पूरी ताकत वहीं लगी हुई थी। ढालें ढप्प-ढप्प करके फूट रही थीं। तलवारों के टुकड़े हवा में उछल रहे थे। मुण्ड कट-कट-कर गिर रहे थे और रुण्ड धरती पर तड़प-तड़प कर लोट रहे थे। रिसते हुए घावों से चारों ओर रक्त बह रहा था। उधर जालिम भी घिरे हुए थे और उनके घाव पर घाव लगते जा रहे थे।

सहसा तोप का एक गोला उनके घोड़े के लगा। घोड़ा ऊँचा उछल कर जमीन पर बिखर पड़ा और जालिमसिंह धड़ाम से नीचे जा गिरे। गिरते के साथ ही सिंधिया ने चिल्ला कर कहा—"गिरफ्तार कर लो।" तलवारें रुक गईं। जालिम ने करवट बदल कर आँखें ऊँची कीं तो चारों तरफ तलवारों की नोकें नज़र आईं। चोट के कारण वे उठ भी नहीं सकते थे और फिर ऊपर तलवारें तनीं हुई थीं। वे बन्दी बना लिये गये।

राजराणा को बन्दी होते देखकर महाराणा अड़सी ने घोड़े की बाग मोड़ दी और बहुत उदास होकर अपनी सेना को कूच का आदेश दे दिया। अपने जख्मों को सहलाती हुई बची खुची सेना मेवाड़ लौट पड़ी। राजसिंह का बेटा रत्नसिंह 'जय एकलिंग की' कहकर विजय घोष करने लगा।

तीसरा परिच्छेद

"त्र्यंबक जी ! जालिमसिंह के उपचार में कोई कसर न रहे। घावों पर ताज़ा मरहम लगा कर रोज़ नई पट्टियाँ बाँधी जायें" सिंधिया ने अकड़ कर कहा—"हमने उसके लिए दो लाख रुपये माँगे हैं।"

"जो आज्ञा महाराज" त्र्यम्बकराव इंग्ले ने कहा "किन्तु महाराज ! मुझे तो जालिम के लिए दो लाख रुपये देने वाला कोई नहीं दीख पड़ता क्योंकि उसके विपक्षियों का दल मेवाड़ में बहुत जोर पकड़ गया है और महाराणा स्वयं संकट में पड़ गये हैं।"

"यदि ऐसा है तो हम इस कमज़ोर महाराणा से खूब रुपये ऐंठेंगे और साथ लेकर उसके दुश्मनों की खबर लेंगे। इसके बाद जब दुश्मन ठंडे पड़ेंगे तो उन से धन लेकर महाराणा से दाँत खट्टे करेंगे। ये बेवकूफ राजपूत इसी तरह आपस में लड़ते रहें तो अच्छा हो। इन की फूट से हमारे कोष में करोड़ों रुपये आ जायेंगे और इन की दशा बिगड़ती चली जायेगी।"

"ईश्वर करे आपकी युक्ति सफल हो।"

"अच्छा, तो फिर बोल दो हमला मेवाड़ पर। उज्जैन का बदला उदयपुर में।"

गरजती घुमड़ती हुई सिंधिया की वीर वाहिनी उदयपुर पर चढ़ आई। उत्तर, पूर्व और दक्षिण दिशा से नगर घिर गया। उदयसागर की विस्तृत जलराशि ने पश्चिम दिशा को बचा लिया। उधर के ऊँचे-ऊँचे पर्वत शिखर भी प्रहरी बन गये।

आवश्यकतानुसार नगरवासी नाव में बैठ कर उदयसागर पार करते थे और जंगल में छिपे पुराने भील मित्रों के पास भोजन सामग्री पहुँचाते थे। यदि महाराणा भीलों को उज्जैन ले गये होते तो हार कर न आते किन्तु जंगल के वासी जंगल में ही मस्त रहते हैं। जंगलों में भटक कर उन्हें एकत्र करने का अवकाश भी किसे था। सिंधिया की सेना का आगमन सुन कर भील स्वतः अपने तीर कमान लिए उदयपुर के पास चले आये। मरगे मारने के लिए ये आदिवासी लँगोटधारी तुरन्त आ पहुँचते थे।

महाराणा अड़सी को भविष्य में अँधेरा ही अँधेरा नज़र आता था। हज़ारों योद्धा उज्जैन में काम आने पर सैन्य शक्ति क्षीण हो चली थी। सेना का वेतन छः महीने से चढ़ा हुआ था। तिस पर सिंधिया की फौज का घेरा। सिपाही बाग़ी हो रहे थे। प्रजा में हाहाकार सा मचा हुआ था। आपत्ति काल के लिए बृहत् अन्न राशि राज्य-भाण्डारों में जमा थी किन्तु जनता अन्न के लिए तरस रही थी। सिंधिया के नक्कारों की चोट सुन-सुन कर महाराणा बहुत चिन्तित होते थे। रात को नींद नहीं आती थी। आँखें उनींदी होने के कारण लाल हो गई थीं और सूज गई थीं। रात दिन राज्य-रक्षा का प्रश्न सामने रहता था।

एक दिन अपनी सेना के एक शिविर के पास गुज़रते समय एक

सिपाही ने महाराणा का अंगोछा खींच ही लिया—"तनख्वाह क्यों नहीं देते ? छः महीने हो गये। बच्चे भूखों मर रहे हैं। और चूसो गरीबों का खून। और बेचनवाओ अपनी रानियों के जेवर ?" उसने अँगोछा झिझाड़ कर कहा।

अड़सी खून की घूँट पी कर रह गये। जवाब देते तो क्या देते। अँगोछा खींचा तो फट गया। सिपाही राजभक्ति के संस्कार के कारण उन्हें घूरता हुआ रुक गया और उसकी आँखों से आँसू की गरम-गरम बूँदें टपक पड़ी।

महाराणा उस फटे हुए वस्त्र को लिये हुए चले गये। जिनकी बंक भृकुटि से बड़े-बड़े वीर काँपते थे वे निरुत्तर से, गुमसुम से वहाँ से चले गये। किन्तु उनकी आँखें खुल चुकी थीं और अपने देश की सारी दुर्दशा उनके आगे उस सिपाही के रूप में मुँह बाये खड़ी थी। "तनख्वाह क्यों नहीं देते। बच्चे भूखों मर रहे हैं" ये शब्द उनके कान में गूँज रहे थे। उन्होंने अपना करम ठोका और अपने आप को धिक्कारने लगे। ऐसी स्थिति में उन्हें अपने भूतपूर्व दीवान अमरचन्द बरुआ की याद आई जिसे एक बार क्रोध में आकर महाराणा ने धक्के देकर राज दरबार से बाहर निकलवा दिया था। शासन के मद में मनुष्य कभी-कभी शैतान बन जाता है। अपने अपमान का अनुभव करके महाराणा ने बरुआ के अपमान का भली-भाँति अनुमान लगा लिया था। उनका चित्त क्षोभ से भर गया। चारों ओर विपत्ति की घटायें उमड़ रही थीं। अमर चन्द को तुरन्त बुलवाया। वृद्ध बरुआ लड़खड़ाता हुआ, लकड़ी टेकता हुआ उपस्थित हुआ और हाथ जोड़ कर, सिर झुका कर बोला—"घणी खम्मा अन्नदाता जी, घणी खम्मा पृथ्वीनाथ।" अपमान के कारण उसकी वाणी अब तक शोक से भरी हुई थी।

महाराणा के आँसू गिरने लगे। बरुआ भी रोने लगा। अड़सी

ने कहा—"हमें अपनी भूल पर सख्त अफसोस है बरुआ जी। हम तुम्हें फिर अपना प्रधान मंत्री बनाते हैं।"

"बड़ी हुकम। मैं तो हुजूर का चाकर हूँ। ताबेदार हूँ। मेवाड़ के लिये सिर हाजिर है। आप का हुकम आँखों पर" बरुआ ने रोते हुए कहा।

"मेवाड़ की लाज बचाना इस समय आप के हाथ में है" महाराणा ने कहा।

"मैं अपनी जान में कोई कसर नहीं रखूँगा, लेकिन मेरी सिर्फ एक शर्त है।"

"कहिये"

'मेरे काम में कोई अड़चन न डाले। रुपया, पैसा, कपड़ा, लत्ता, धन, दौलत—जो मैं चाहूँ और जितना खर्च करना चाहूं उस पर कोई आक्षेप न करे।"

"हमें स्वीकार है" महाराणा ने कहा।

"बस तो फिर ठीक है। मेवाड़ की रक्षा हो जायेगी। सेना के प्रत्येक सिपाही का वेतन एक एक पाई चुका दिया जाये।"

राजकोष खोला गया। हीरे, जवाहिरात, मणि, आभूषण सब बाहर निकाले गये। सैनिकों को वेतन दिया गया। गिन-गिन कर उन्होंने अपने रुपये सँभाले और खुशी से फूले न समाये। एकलिंग जी की जय बोलने लगे। अन्न भाण्डार खोला गया। दुकानों पर अनाज के ढर लग गये। सारे नगर में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। सैनिक और असैनिक सब अपने देश की रक्षा के लिये कटिबद्ध हो गये। सब लोग केसरिया बाना पहन कर रण में जूझने की तैयारी करने लगे। जंगली भीलों को सावधान कर दिया गया। इन सब गति विधियों की सिंधिया को जब खबर मिली तो वह भी मान गया कि दीवान बरुआ टेढ़ी खोपड़ी है।

संधि की बातचीत शुरू हुई। यदि गुड़ खिलाने से काम बन जाये तो जहर देने की क्या जरूरत है। दोनों ओर से पैगाम आने जाने लगे। बरुआ ने लिखा कि आपस में हिन्दू-हिन्दू कट मरेंगे तो सिवाय कलंक के और क्या मिलेगा। हजारों वीरों के प्राण चले जायेंगे। स्त्रियाँ आग में कूद पड़ेंगी।

सिंधिया ने जवाब भेजा—'यदि सत्तर लाख रुपया मेरे हवाले करो तो बिना युद्ध किये लौट जाऊँगा और रत्नसिंह का पक्ष छोड़ कर महाराणा अड़सी से मैत्री कर लूँगा। उज्जैन के युद्ध में मेरे जो सिपाही कटे हैं उनका यह हरजाना है। हमला तो महाराणा ने ही किया था। हम तो लड़ने आये नहीं थे।"

सौदा घटाते-घटाते अमरचन्द ने साढ़े तिरेसठ लाख पर तय किया जिस में आधे से अधिक रुपये नक़द देना मंजूर कर लिया। बैल गाड़ियों में रुपयों की थैलियाँ लादी गईं। उन के चारों ओर घुड़सवार साथ चले। सिंधिया मूँछों पर ताव देकर गद्दी पर बैठा रहा। थैलियाँ सामने धरी गईं। मराठा गद्गद हो गया। लगभग पाँच सौ लोगों को रुपयों गिनने का आदेश दिया गया जिन्होंने बात की बात में रुपया गिन कर धर दिया। तैंतीस लाख रुपये वसूल पाये। बाकी धन के लिये मेवाड़ ने नीमच, जावद, जीरण और मोरबन के परगने गिरवी रख दिये। उन के प्रबन्ध के लिये सिंधिया ने मेवाड़ में अपने मराठे प्रतिनिधि नियुक्त किये। बिना युद्ध किये काम बन गया। साँप भी मर गया और लाठी भी न टूटी। खुशी के ढोल बजाता हुआ सिंधिया अपनी सेना लेकर वापस चला गया।

× × ×

"इंग्लै जी, जरा सुनिये तो" जालिमसिंह ने कहा।

"क्या सुनूं राजराणा जी। आप की सहायता के लिये कोई तैयार नहीं है। न जाने कब तक आप इसी प्रकार बन्दी रहेंगे। दुर्भाग्य ने

आप का पीछा नहीं छोड़ा। जैसे कोटे में किस्मत फूट गई वैसे ही मेवाड़ में भी आप असफल रहे। आप को पता नहीं कि महाराज सिंधिया को महाराणा अड़सी ने साढ़े तिरेसठ लाख रुपये भेंट किये हैं। वे दोनों अब मित्र बन गये हैं। देखी रुपये की करामात ?"

"सच बताओ इंग्ले जी ? क्या यह सच है ? क्या एक दूसरे के शत्रु अब मित्र बन गये हैं" ज़ालिम ने आँखें फाड़ कर कहा।

"जी हाँ" इंग्ले ने कहा—"अब आप को कौन पूछता है राजराणा जी। राम नाम जपिये और पड़े रहिये यही क्षिप्रा के किनारे। सिंधिया की सेना तो मेवाड़ से लौट भी आई। महाराणा ने आप को मुक्त कराने का उन से जिक्र तक नहीं किया। उनकी तरफ से अब आप जायें भाड़ में। आप की हथकड़ियाँ न जाने कब उतरेंगी।"

"तो क्या महाराज सिंधिया अब भी मेरे लिये दो लाख रुपया माँगते हैं। अरे भाई, अब तो ईश्वर ने बहुत दे दिया है। मेरी हालत पर रहम करो, इंग्ले जी" राजराणा ने फुसलाते हुए कहा—"क्या इतने मराठों में मेरा एक भी दोस्त नहीं है ? जब मैं कोटे में था तो मुझे मराठों की दोस्ती पर कितना नाज़ था। भटवाड़े का युद्ध भी मैंने मराठों की सहायता से जीता था। आज जब मैं बन्दी हूँ तो कोई मुझ से बात तक नहीं करता। क्या वह सारी दोस्ती खत्म हो गई ? इंग्ले जी, मैं वादा करता हूँ कि आप यदि मुझे छुड़वा दें तो इस अहसान का बदला किसी दिन लाखों रुपयों से चुकाऊँगा। राजपूत अपनी बात का धनी होता है। मैं जो कह रहा हूँ उसे पत्थर की लकीर समझिये। क्या आप को अपने पुराने मित्र की बात पर इतना भी विश्वास नहीं है ?"

त्र्यंबक राव कुछ देर तक चुप रहा। ज़ालिम की बात उसके दिल में घर कर गई थी। ज़ालिमसिंह उत्तर की प्रतीक्षा में उसकी ओर अधीर होकर देख रहे थे। सोच समझ कर मराठा बोला—"एक शर्त

है राजराणा जी"

"निस्संकोच कहिये।"

"मेवाड़ के कुछ मराठों से कर वसूल करने के लिये सिंधिया के प्रतिनिधि अभी वहाँ कई बरस रहेंगे। यदि आप मेरे लड़के अम्बा जी के पाँव मेवाड़ में जमा दें और धीरे-धीरे उसे मुख्य प्रतिनिधि बनवा दें तो मैं आप को छुड़वाने की कोशिश करूँ ?"

"मैं वादा करता हूँ" जालिमसिंह ने कहा—'राजपूत जिसे एक बार अपना मित्र बना लेता है उसका दुःख सुख में सदा साथ देता है और इतना ही नहीं उसके लिये अपनी जान तक दे सकता है। आज से मैं अम्बा जी को अपना छोटा भाई समझूँगा।"

"हमें आप की बात पर पूरा विश्वास है राजराणा जी" इंग्ले ने कहा—"अच्छा, मैं अभी महाराज से भेंट करने जाता हूँ।"

विजयी सिंधिया को विजय की बधाई देता हुआ और ईश्वर से उनकी और अधिक विजय की विनती करता हुआ त्र्यंबक राव बोला—

"महाराज! मेरा नम्र निवेदन है कि इस खुशी के उपलक्ष में जालिमसिंह को मुक्त कर दिया जाये क्योंकि अब स्थिति काफी बदल गई। जालिमसिंह के लिये अब कोई भी व्यक्ति दो लाख रुपये नहीं दे सकता। मेवाड़ का राजकोष बिल्कुल खाली पड़ा है। जालिमसिंह मेरा पुराना दोस्त है। मेरी खातिर ही उस ग़रीब को रिहा कर दीजिये। सेवक उस के लिये साठ हज़ार रुपये नक़द आप की सेवा में पेश करता है।"

सिंधिया के मुँह में पानी भर आया। "यदि आप यही चाहते हैं त्र्यंबक जी, तो हमें कोई एतराज नहीं है लेकिन ऐसा न हो कि जालिमसिंह यहाँ से छूट कर फिर उन्हें हमारे खिलाफ भड़काये।"

"कभी नहीं महाराज। वह आप के अहसान को कभी नहीं भूलेगा। बल्कि उसने तो यहाँ तक वादा किया है कि वह हमारी हमेशा मदद करेगा।"

"अच्छा तो हम उसे मुक्त करते हैं। आप साठ हजार रुपया हमारे कोषाध्यक्ष को दे दीजिये।"

"जो आज्ञा महाराज।" इँग्ले ने साठ हजार रुपये नक़द गिनवा दिये।

हथकड़ियाँ बेड़ियाँ टूटने पर जालिमसिंह ने इँग्ले को गले लगाया और विदा माँगी और घोड़े पर चढ़ कर मेवाड़ पहुँचे।

किन्तु अब मेवाड़ दूसरा ही मेवाड़ था। अब वह जालिम का मेवाड़ नहीं था। चारों तरफ दीवान अमर चन्द बरुआ का बोलबाला था। वह किसी को महाराणा के मुँह नहीं लगने देता था। वचनबद्ध होने के कारण महाराणा उस के काम में कोई हस्तक्षेप नहीं करते थे और न उन्हें इस की जरूरत पड़ती थी।

जालिम के पदार्पण से मेवाड़ की राजनीति में फिर कुछ उथल-पुथल होने लगी। चूँडावत और सक्तावत अपना-अपना बल तोलने लगे। सक्तावतों के दामाद होने के कारण जालिम उधर ही थे। अपना पक्ष दृढ़ करने केलिये राजराणा ने मराठों को अपनी ओर फोड़ा। त्र्यंबक राव के पुत्र अम्बा जी इँग्ले को उदयपुर में जमाया गया। किन्तु बरवा यह सारा खेल समझ रहा था। उसे यह भी आशंका थी कि कोटे में जिस प्रकार अखैराम कायस्थ की हत्या हुई उसी प्रकार कहीं उसे भी स्वर्ग में न भेज दिया जाये अतः वह सचेत हो गया और उसने महाराणा से जाकर कहा—"पृथ्वीनाथ। जालिमसिंह मराठों से साँठ गाँठ कर रहा है। कोई आश्चर्य नहीं कि मेवाड़ में फिर कोई उत्पत्ति आरम्भ हो जाये। ऐसे व्यक्ति को कभी पनपने न दीजिये। मेरी तो यही सलाह है कि जालिमसिंह की जागीर चीताखेड़ा जब्त करली जाये जिससे उसकी अक्ल अपने आप ठिकाने लग जायेगी। आप उस के चक्कर में न पड़िये।"

"ठीक कहते हो बरवा जी। हम ने उज्जैन में हजारों वार नष्ट

करवा दिये, उसी का हमें बहुत खेद है। अब हम अधिक रक्त-पात देखना नहीं चाहते। अब जैसा चाहते हैं वैसा करिये।"

जालिमसिंह फिर मायूस हो गये। रोटी पानी का साधन ही छिन गया। यदि उज्जैन में उन की पराजय न हुई होती तो वे न जाने क्या से क्या बन गये होते। क्या बरवा और क्या महाराणा। उनके आगे कोई खड़ा नहीं हो सकता था। अब वे केवल नाम मात्र के राजराणा रह गये जो क़ैदी की जीवन बिता कर बाहर निकले थे।। जिधर वे गुज़रते उधर ही लोग उन्हें देख कर मुँह फेर लेते थे। वे मेवाड़ में बिल्कुल परदेसी की तरह हो गये। आर्थिक स्थिति भी कमज़ोर थी। किन्तु चतुर राजनीतिज्ञ विषम से विषम स्थिति में भी कोई न कोई दाव खेल बैठता है। उन्हें अपने मित्र मल्हार राव होल्कर की याद आई जिन्होंने भटवाड़े के युद्ध में उन की सहायता की थी। भाग्य की करवट कहिये या राजनीति की चाल कहिये जो मल्हार राव होल्कर ने कोटा राज्य पर आक्रमण कर दिया—वही होल्कर, जो जालिम का घनिष्ट मित्र था। मेवाड़ को छोड़ कर कोटा राज्यमें पुनः सर्वेसर्वा बनने के लिये जालिम को एक स्वर्ण अवसर प्राप्त हो गया और उन्होंने अपना घोड़ा सीधा कर दिया कोटे की तरफ। होल्कर की सेना तेज़ी से बढ़ रही थी। इधर कोटे का सैनिक शासन जालिम के प्रस्थान के बाद बिगड़ चला था। लोभी गोलन्दाज़ बारूद चुरा कर बाजार में बेच देते थे। साईस घोड़ों का दाना चुराते थे, घास बेचते थे और महावत हाथियों की रोटी का आटा बचा कर घर ले जाते थे। हिसाब किताब लिखने वाले कामदार भी अपनी कलम मारे बिना नहीं रहते थे। अन्न भण्डारी बनियों से रिश्वत खाते थे।

होल्कर की सेना ने बकानी का किला घेर लिया। दुर्ग का द्वार तोड़ने के लिये एक विशालकाय हाथी नियुक्त किया गया। हाथी को शराब पिला कर महावत ने अपनी पैनी अंकुश हाथी के कान के पीछे

मारी और वह चिंघाड़ मार कर द्वार पर हूलने लगा। हाथी के मस्तक पर लोहे का मजबूत तवा बँधा हुआ था ताकि किवाड़ों के सींकचे उसके सिर में न घुसें। भीषण टक्करों से दोनों किवाड़ चरमराने लगे। किवाड़ टूट जाने की संभावना से दुर्गपति माधोसिंह शेर की तरह गरज कर किले की दीवार से हाथी पर कूदा और तलवार के एक झटके से उसने महावत की गर्दन अलग कर दी। बगल से कटार खींच कर हाथी के सिर में ठूँस दी और नीचे कूद पड़ा। हाथी चिंघाड़ मार कर भागा और उधर किले में से चार सौ हाड़ा द्वार खोल कर बाहर आये। माधोसिंह साथियों सहित दुश्मनों पर झपटा। घमासान युद्ध आरम्भ हो गया। सैंकड़ों योद्धा कट गये।

"इस किले को जीत कर हमें आखिर करना ही क्या है। हम तो जाकर कोटा फतह करेंगे" यह कह कर मल्हार राव ने अपनी सेना बकानी का किला छोड़ कर कोटे की ओर बढ़ाई। रास्ते में सुकेत की गढ़ी पड़ती थी। थोड़ी सी लड़ाई के बाद होल्कर ने उसे जीत लिया और अपनी सेना और आगे बढ़ाई। कोटा नगर में खलबली मच गई। कहीं सारी बस्ती शमशान न हो जाये। कहीं माताओं की कोख सूनी न हो जायें, कहीं पत्नियों की माँग का सिन्दूर न पुछ जायें, कहीं बालक अनाथ न हो जायें।

महाराव गुमानसिंह ने संधि के लिये पैगाम भेजा किन्तु होल्कर कब मानने वाला था। संधिकर्ता रोता सूरत लेकर वापस लौट आये। सारे नगर में भय और आतंक छाया हुआ था।

जालिमसिंह झाला तेजी से अपना घोड़ा दौड़ाते हुए उदयपुर से चले आ रहे थे। सुबह से शाम तक अश्व दौड़ता था और रात्रि को विश्राम करता था। एक दिन सूर्य अस्त होते-होते जालिमसिंह यात्री का वेष बनाये हुए कोटा नगर के दरवाजे में घुस गये। एक मित्र

के यहाँ घोड़ा बाँध दिया। रनिवास पहुँचे। बाँदियों ने झुक-झुक कर सलाम किया। अपनी बहिन के पास सन्देश भिजवाया कि भाई मिलने आया है।

पाँच वर्ष बीत चुके थे। बहिन हर्ष से गद्गद् हो गई—एक ऐसे भाई से मिल कर जिस के दुबारा मिलने की वह आशा छोड़ बैठी थी। महाराव गुमानसिंह भोजन के लिए आने को थे। राजा का क्रोध और पिछली सब बातें भूल कर जालिमसिंह सहसा उन के आगे जा खड़े हुए और बोले—"इस संकट के समय आप की सेवा करना मैंने अपना कर्तव्य समझा है। जिन्दा रहते मैं अपनी आँखों से अपनी जन्मभूमि की दुर्दशा कभी नहीं देख सकता।"

महाराव बहुत प्रसन्न हुए और उन से गले मिले। बोले—"यदि इस वक्त ही आप सहायता न करेंगे तो फिर कब करेंगे।"

"आप यदि हुक्म दें तो मैं होल्कर से जा कर बात करूँ। मैं वह काम कर सकता हूँ जो आप की सारी सेना नहीं कर सकती। मुझे विश्वास है कि मेरे कहने पर होल्कर वापस लौट जायेगा।"

"नेकी और पूछ-पूछ" महाराव ने कहा—"इससे बढ़कर खुशी की बात और क्या हो सकती है कि आप होल्कर को बिना युद्ध किये वापस भेज दें। आप उन से जरूर मिलिये। ईश्वर आपको अपने कार्य को सफलता प्रदान करे।"

प्रातः काल जालिमसिंह अकेले अपने घोड़े पर चढ़ कर होल्कर से मिलने चले। मल्हारराव को सूचना मिली कि जालिमसिंह मिलने आ रहे हैं। उन के स्वागत की तैयारी की गई। दस वर्ष के बाद गद्दीनों सेनानियों की भेंट हुई। बगलगीर हुए। पुरानी याद ताजा हो गई। परिवार के हाल चाल पूछे गये। बातें करते-करते जालिमसिंह

ने होल्कर को छः लाख रुपये देने का वादा किया और उसे संधि के लिए तैयार कर लिया।

होल्कर ने रुपया लेकर अपनी सेना वापस इन्दौर की ओर मोड़ दी। जीता हुआ राज्य लौटा दिया। उसके नियुक्त किये गये दुर्ग रक्षक भी अपने-अपने स्थान छोड़ कर चले गये। महाराव गुमानसिंह बहुत प्रसन्न हुए। साले बहनोई फिर एक हो गये। जालिमसिंह को पुनः कोटा राज्य का प्रधान मंत्री बनाया गया और उनकी पुरानी जागीर उन्हें फिर मिल गई।

चौथा परिच्छेद

"तुम्हें वह दिन याद है सक्तावत जी, जब सारी जायदाद छीन कर मुझे कोटे से बाहर निकाला गया था।"

"हाँ, हाँ। क्यों? आज कैसे उसकी याद आ गई?"

"अपमान का बदला लेने के लिए मेरा दिल उस दिन से आज तक जल रहा था। आज मेरे चित्त को शांति मिली है" जालिम ने कहा।

"क्यों, कैसे" पत्नी ने घबराकर पूछा।

"बस महाराव जी अब थोड़ी देर के मेहमान हैं।"

"हे भगवान्! यह क्या अनर्थ कर दिया?"

"बस जो हुआ सो हुआ। अब उस पर पानी डालो और चुप रहो।"

महाराव गुमानसिंह उपदंश से पीड़ित थे। हकीम वैद्यों के बहुतेरे इलाज के बाद भी रोग दूर नहीं होता था। कुछ दिनों से उपदंश का प्रकोप बढ़ गया। फोड़े पक गये। घाव रिसने लगे। जलन बढ़ने लगी। जालिमसिंह ने राज-वैद्य को पटाया। जख्मों पर जहर की

पट्टियाँ चढ़वा दीं। किसी को कानोंकान खबर न हुई। ज़हर ने अपना असर दिखाना शुरू किया। महाराव को अपना अन्त समय निकट दीखने लगा। दस वर्षीय पुत्र की चिन्ता थी। कैसे राज्य करेगा? ज़ालिम से कैसे लोहा लेगा? अंत में उन्होंने सब सरदारों को बुलाया। ज़ालिम भी उपस्थित हुए। महाराव की उस गिरती हुई दशा पर बहुत खेद प्रकट किया। कई सरदार आँसू बहाने लगे और राजभक्ति दिखाने लगे।

महाराव ने अपने पुत्र को ज़ालिम की गोद में बैठा दिया और कहा—"बेटा, जब तक ज़िन्दा रहो हमेशा अपने मामा की सलाह से काम करना।"

यह कह कर वे ज़ालिमसिंह की ओर करुण नेत्रों से देखने लगे। ज़ालिम भी भाव विभोर हो गये और छाती पर हाथ रख कर बोले—"मैं वादा करता हूँ कि इनके जीवन पर कभी आँच न आने दूँगा। मैं इनकी रक्षा और राज्य की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर दूँगा।"

महाराव ने संतोष की साँस ली। अधर हिलने लगे। राम का नाम लिया और एक लम्बी हिचकी के साथ उनके प्राण शरीर से बाहर चले गये। सारे नगर में हाहाकार मच गया। महाराव गुमानसिंह बहुत लोकप्रिय शासक थे और जनता उनके निधन से बहुत शोक ग्रस्त हुई। भविष्य की चिंता हो रही थी। उत्तराधिकारी केवल दस वर्ष का बालक था। राजमहल में अंधकार सा छा गया। राजमाता ने पति वियोग से मानो वैराग्य ही ले लिया। सारा महल उन्हें खाने को दौड़ता था। झाड़ फानूस देख कर नफ़रत होती थी। ज़ालिम की सख्त हुकूमत का चित्र सब की आँखों में आगे घूमता था।

आखिर वही हुआ जिसकी आशंका थी। ज़ालिमसिंह अब पूर्ण-रूपेण निरंकुश और निष्कंटक शासक थे। उनके दस वर्षीय भानजे

महाराव उम्मेदसिंह कठपुतली की तरह तख्त पर बैठे रहते थे। इतनी अल्प अवस्था में वे राजकाज की बातें कहाँ समझ सकते थे और यदि समझते भी तो उनकी चलने कौन देता था। असली शासक तो जालिमसिंह ही थे। उन्होंने राज्य की सैन्य शक्ति बढ़ाई। किलों और गढ़ियों की मरम्मत करवाई। कोटा नगर के चारों ओर ऊँची और मजबूत दीवार खिंचवाई। इस सब खर्च को पूरा करने के लिए वे किसानों से खब कर वसूल करते थे। मज़दूरों की दिन भर की मजूरी उस युग में केवल एक आना होती थी। औरत को दो पैसे दिए जाते थे।

जालिमसिंह ने अपने गुप्तचरों की संख्या बहुत बढ़ाई। उन्हें वे इनाम भी अच्छा देते थे। रजवाड़े के प्रत्येक राज्य में उनके गुप्तचर नियुक्त थे। राजाओं के रनिवासों में जालिम के दूत और दूतियों का जाल बिछा हुआ था। उन्हें यह तक ज्ञात हो सकता था कि कौन सा राजा अपनी कौन सी रानी के पास कौन से वस्त्र पहनकर मिलने गया और उसने क्या बातें कीं। कभी-कभी राजा रानियों में किसी बात पर कलह हो जाने पर जालिमसिंह उनसे मज़ाक करने के लिए पत्र द्वारा उन का कुशल क्षम पूछते थे जिसे पढ़कर वे राजा चकित हो जाते थे और अपने घर के कुप्रबन्ध पर लज्जित होते थे। इसी प्रकार कोटा राज्य के प्रत्येक गाँव में जालिम का कोई न कोई आदमी रहता था और वह उन गाँव वालों में से ही कोई होता था। ऐसी गुप्तचर व्यवस्था उस समय संसार भर के किसी राज्य में नहीं थी।

इस सब व्यवस्था का एक विशेष कारण था और वह यह था कि झाला जालिमसिंह हाड़ा राजपूतों के बीच में अपना आसन जमाये बैठे थे। हाड़ों को वे पनपने नहीं देते थे क्योंकि ऐसा करने से उन्हें खतरा मोल लेना पड़ता था। उधर हाड़ा सरदार भी

ज़ालिम को चैन नहीं लेने देते थे। कुछ तो आत्मरक्षा के लिए और कुछ ज़ालिम को परास्त करने के लिए वे कोई न कोई षड्यन्त्र रचते रहते थे। हाड़ा राजपूतों की जागीरें इस प्रकार के विद्रोह की केन्द्र बनी हुई थीं।

राजराणा ने सारे कोटा राज्य का दौरा किया मानो दिग्विजय के लिए चल पड़े हों। जिस गाँव में वे जाते वहाँ के लोग झुक-झुक कर उन को सलाम करते और रुपए भेंट करते थे। उनके सम्मान में दावतें देते थे। लाडूबाटी खिलाते थे। प्रत्येक गाँव में ज़ालिम ने एक पटेल नियुक्त किया जो किसानों से कर वसूल करता था और तहसीलदार के पास उसे जमा करता था। गाँव वालों को वह काबू में रखता था और समाचार भेजता रहता था। पटवारी अलग नियुक्त थे जो जमीनों के पट्टे वगैरा का हिसाब रखते थे।

ज़ालिमसिंह को मराठों से टक्कर लेने के लिए बहुत धन की आवश्यकता होती थी और मराठे काफी रुपया लिये बिना वापस नहीं जाते थे। इसलिए ज़ालिम ने जनता से खूब कर वसूल किया। किसी न किसी कर के रूप में सब को धन देना पड़ता था। यहाँ तक कि साधु सन्यासी भी अच्छी तरह मूँडे जाते थे।

अनिष्ट की आशंका से ज़ालिमसिंह सदैव सतर्क रहते थे। अपने अंगरक्षकों को पास रखते थे। नहाने और सोने के समय उन्हें अधिक भय रहता था क्योंकि ऐसे अवसरों पर उन पर कई बार घातें हो चुकी थीं। आखिर तंग आकर उन्होंने अपने लिए लोहे का एक बड़ा पिंजरा बनवाया। रात में उस पिंजरे के भीतर जाकर, अन्दर से किवाड़ बन्द करके ताला लगाते थे और चाबी सिरहाने के नीचे रखते थे। तब जाकर उन्हें नींद आती थी। जब कभी दौरे पर जाते तो वह पिंजरा आगे से आगे उन के रात्रिवास के लिए भेज दिया जाता था।

जालिमसिंह के अभयकुमारी नाम की एक कन्या थी जो अपने पिता के स्वभाव से बिल्कुल विपरीत थी। बड़ी सीधी सादी और सौम्य स्वभाव की लड़की थी जिस पर ज़ालिम का बड़ा स्नेह था. और बड़े लाड़-प्यार से उन्होंने उसे पाला पोसा था। उन्होंने उस का विवाह बूँदी नरेश रावराजा उम्मेदसिंह के पुत्र कुँअर अजीतसिंह से किया। अजीतसिंह के और भी कई कुँवरानियाँ थीं किन्तु दुर्भाग्य से वे युवावस्था में ही स्वर्ग सिधारे। अभयकुमारी को अपना शेष जीवन विधवा के रूप में काटना पड़ा। बड़ी कुँवरानी के ज्येष्ट पुत्र विष्णुसिंह को राजगद्दी पर बिठा कर रावराजा उम्मेदसिंह ने सन्यास ले लिया किन्तु सन्यास की अवस्था में भी राजर्षि कुछ वर्षों तक अपने बालक पौत्र के अभिभावक के रूप में राज काज चलाते रहे।

जालिमसिंह को अपनी पुत्री के विधवा होने का बहुत दुःख हुआ किन्तु ईश्वर की इच्छा के आगे वे कर ही क्या सकते थे। उनका जीवन शासन प्रबन्ध करते ही बीतता था और प्रत्येक घटना को वे राजनीतिक पहलू से देखते थे। फिर भी राजनीति के पथ से हट कर कोई-कोई घटना उन के जीवन में इतनी दिलचस्प होती थी कि उस की खबर चारों ओर फैल जाती थी।

एक बार एक चारण राजराणा के पास आया और उन की प्रशंसा में उस ने कुछ छंद बहुत सुन्दर सुनाये :—

पब्बय को पेलै कौन, बज्र को धकेले कौन,
बीर ख्याल खेलैं कौन, झेलै कौन झाला को।

अपनी तारीफ सुन कर जालिमसिंह प्रसन्न अवश्य हुए लेकिन कहने लगे—"मेरी सब लोग झूठ-मूठ तारीफ करते हैं। मेरे जीवन का सही अंकन करने वाला मुझे कोई नहीं मिला। मैंने सिर्फ सुना ही सुना है कि कवि सत्यवादी होता है और राजा हो या रंक, सब का वर्णन साफ-साफ करता है लेकिन मैंने हमेशा कवियों को खुशामद करते ही देखा है। सच्चा कवि मुझे आज तक जीवन में कभी नहीं मिला।"

इस पर चारणदेव ने अक्खड़ ढंग से अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा—"राजराणा जी, यदि आप इजाजत दें दो मैं आपकी सच्ची प्रशंसा के छंद भी सुना सकता हूँ।"

राजराणा को पता न था कि वह इतनी जल्दी कविता बना लेगा। अतः वे निस्संकोच होकर बोले—"हाँ, हाँ, जरूर सुनाइय। हम तो खुद ऐसी कविता सुनना चाहते हैं।"

इस पर उस चारण ने डिंगल में दो चार दोहे ऐसे कोरे-कोरे सुनाए कि जालिमसिंह गुस्से से आग बबूला हो गये। उनमें एक दोहा इस प्रकार था :—

जालम जोरयाँ मत करे, दुख पावे छे रेत।
कधीक सरग पधारशो, कुटुम कबीला सेत॥

(हे जालिमसिंह ! जुल्म न करो। जनता दुःख पा रही है। कोई दिन ऐसा होगा कि आप अपने सारे कुटुम्ब कबीले सहित स्वर्ग पधार जाओगे।)

क्रोध से जालिम का चेहरा सुर्ख हो गया। हमारे ही सामने हमारी ही तौहीन ? तिलमिला कर वे अपने नौकरों से बोले—"काट लो नाक इस साले बारहठ की और निकाल दो इस को बाहर काला मुँह करके।"

बेचारे चारण की दुर्गत बनाई गई। किन्तु नाक कटने पर भी वह सारे शहर में यही दोहा बड़बड़ाता चला गया और यह पंक्तियाँ सारे राज्य में आग की तरह फैल गईं। आज तक वहां के लोग इस दोहे को नहीं भूले हैं।

तनिक अप्रसन्न होने पर जालिमसिंह तानाशाह की तरह सख्त से सख्त सजा देते थे। जनता उनके नाम से थर्राती थी। एक दिन जालिम की सवारी जा रही थी। काफी ऊँचे हाथी के सुनहरी हौदे पर विराजमान थे। आगे पीछे घुड़सवार चल रहे थे। हाथी के दायें बायें कुछ अंगरक्षक पैदल चल रहे थे। दूर से एक अकड़ू

राजपूत ने उनकी सवारी आती देखी। उसे भी उधर से ही गुज़रना था। हाड़ा ने सोचा कि मैं पैदल जा रहा हूँ और झाला हाथी पर सवार है यह कुछ अच्छा नहीं लगता। उनसे कुछ परिचय भी था अतः काफी शर्म आ रही थी। मूँछों पर ताव देकर वह अकड़ू एक ऊँचे पेड़ पर जा चढ़ा और जब राजराणा का हाथी नीचे से गुज़रा तो खाँसता खखारता हुआ एक हाथ ऊँचा करके ज़ोर से बोला—"जै गोर्धननाथ की, झाला जी।"

क्रोध और द्वेष से ज़ालिमसिंह लाल-पीले हो गये। उन्होंने तुरन्त नीचे झाँक कर अपने एक अंगरक्षक की ओर संकेत किया जिसने "ठाँय" से गोली चलाई और बेचारा ठाकुर उलट कर पेड़ से नीचे आन पड़ा।

ज़ालिमसिंह अपने आप को बड़ा भारी समाज सुधारक भी मानते थे और उस युग में वे तत्कालीन जनता द्वारा अपने ज़माने से काफी आगे बढ़े हुए पुरुष समझे जाते थे। भूत, प्रेत और डायनों से उन्हें सख़्त चिढ़ थी। डायनों की परीक्षा और दण्ड के लिए उन्होंने मज़ेदार तरीके निकाल रखे थे। उदाहरण के लिए जो औरत सब लोगों द्वारा डायन बतायी जाती थी उसे उटा कर एक तालाब में फेंक दिया जाता था और उसके बाद सब उसे कौतूहल से देखते थे। निर्णय यह होता था कि जो डायन होगी वह पानी में डूब जाएगी और जो डायन नहीं है उसे भगवान् अपने आप बचा लेगा और वह तैर कर बाहर निकल जाएगी। इस प्रकार अनेक डायनों की जल में ही अंत्येष्टि हो जाती थी। अधिकतर स्त्रियाँ तैरना नहीं जानतीं। अतः डायन और अडायन सब डूब जाती हैं किन्तु इस दण्ड का सब से अच्छा परिणाम यह निकला कि राज्य में दुराचारिणी स्त्रियों की संख्या बहुत कम हो गई।

इसी प्रकार भूत-प्रेत और देवी देवता भी राज्य में बहुत कम हो गये थे। एक गाँव में एक व्यक्ति ढोंग रचा करता था कि काल

भैरव उसके शरीर में आकर बोलते हैं। आये दिन वह काफी उछल कूद करता था और मूर्ख ग्रामीणों से भोजन सामग्री माँगा करता था।

बेचारे ग्रामवासी भयभीत होकर काल भैरव को शान्त करने के लिए फूल-फूल चढ़ाते, दूध दही चढ़ाते, पैसे चढ़ाते, बच्चे बीबियों से प्रणाम करवाते और स्वय भी साष्टांग दण्डवत् करते थे। उससे भविष्य की बातें पूछते थे, मौसम का हाल पूछते थे। स्त्रियाँ पुत्र जन्म की प्राथना करती थीं, परसाद चढ़ाती थीं, बच्चों के गले में काला डोरा बाँधती थीं।

ज़ालिम को भी कालभैरव की सूचना मिली तो एक दिन जा पहुँचे उस गाँव में घोड़े पर चढ़ कर। उन्हें देखते ही उस बेचारे के देवता कूच कर गये। खैर, काल भैरव जो बना हुआ था। एक दम शान्त हो जाना भी भैरव को शोभा नहीं देता। और लोगों के साथ जब ज़ालिमसिंह भी बैठ गए तो उछलता कूदता हुआ वह भैरव मौक़ा देख कर उन के पास आया और कान में बोल —"हुज़ूर, बच्चों का पेट पालने के लिए यह सब हरकतें करता हूँ।"

ज़ालिमसिंह ने कान में ही उत्तर दिया—"कल यहाँ से चला जा, वर्ना इतने जूते लगवाऊँगा कि कोई गिनने वाला नहीं मिलेगा। टाँट के बाल उड़वा दूँगा।"

यह कह कर लोगों के सामने भैरव के प्रति अपनी श्रद्धा जताने के लिये उन्होंने भी उसे एक नारियल भेंट किया जिसे फोड़ कर चटकें बांटी गईं और प्रणाम करके ज़ालिम लौट आये। उसी रात को काल भैरव वहाँ से ऐसे भागे कि फिर उन्होंने वापस आने का नाम नहीं लिया।

एक बार ज़ालिम को समीपवर्ती गाँव से सूचना मिली कि देवी के एक मंदिर में एक औरत की लाश कटी पड़ी है। तुरन्त घोड़े पर चढ़कर वे उस गाँव की ओर चल दिय। सवेरे का समय था। भगवान्

भास्कर को उदित हुए मुश्किल से एक घण्टा हुआ था। उनके गाँव तक पहुंचते-पहुँचते काफी आदमियों की भीड़ मंदिर के आंगन में जमा हो गई। अनिष्ट की आशंका से पुजारी ने मंदिर के पट बन्द कर दिए कि कहीं मार-पीट न हो जाये। एक वृद्धा ब्राह्मणी मंदिर के एक कोने में मुँह ढाँके सिसक रही थी। वह उस लड़की की माँ थी।

राजराणा ने आते ही पुजारी को हुक्म दिया—"दरवाज़ा खोल।" मंदिर के पट खुले। धरती खून से रंगी हुई थी। लड़की का कटा हुआ सिर अपनी मूक वेदना स्वतः व्यक्त कर रहा था। बड़ी-बड़ी निश्चेष्ठ आँखें, बाल बिखरे हुए, अधर मौन थे मानो बात करते-करते कुछ ही देर पहले रुक गये थे। शरीर निश्चल कटे हुए पेड़ की तरह चेतना-हीन औंधा पड़ा हुआ था।

"किसने इसकी हत्या की?" ज़ालिम ने गरज कर पुजारी की ओर देखा। भय से ब्राह्मण काँपने लगा—"महाराज! इसकी हत्या किसी ने नहीं की। इस लड़की ने स्वयं मंदिर में प्रवेश करके देवी के खड्ग से अपना सिर काट लिया है।" खड्ग अब भी पास ही पड़ा था।

"लेकिन क्यों?" ज़ालिम ने आँखें लाल करते हुए पूछा।

पुजारी ने शव को पलट कर कहा—"महाराज, यह लड़की गर्भिणी थी।" सब लोग सन्न रह गये। ज़ालिम की आँखें और भी लाल हो गईं—कुछ क्रोध से और कुछ रोमांच से।

"अच्छा, तो किसी पापी के पाप को छिपाने के लिये इस लड़की ने अपनी बलि दी है। कौन है वह आदमी?"

गाँव वाले सब सुट्ट खड़े थे। किस की हिम्मत थी जो मौत को गले लगाता।

"मैं आज इसका पता लगा कर ही जाऊँगा" राजराणा ने कहा और फिर पुजारी से बोल—"तूने इस लड़की को मरने से रोका क्यों नहीं?"

"महाराज ! माँ का द्वार सबके लिए खुला है। जो अपने आप को देवी के अर्पण कर दे उसे कैसे रोकूं ?"

"बन्द करो इस बकवास को। यह देखना तुम्हारा फ़र्ज़ है कि मंदिर में कोई हत्या न हो। आज से यदि राज्य के किसी मंदिर में कोई नर बलि हुई तो हम उसके पुजारी को सख्त से सख्त सज़ा देंगे। फिर उन्होंने अपने एक साथी से पुजारी को गिरफ्तार करने के लिये कहा और हुक्म दिया कि पन्द्रह दिन तक उसके दस कोड़े रोज़ लगाये जायें।

राजरानी ने उस दिन उसी गाँव में ठहरने का निश्चय किया। कुछ समय बाद उन्हें विश्वस्त लोगों से पता चल गया कि एक जाट का उस लड़की से प्रेम था। इस मामले को ज़ालिम ने सब ग्रामीणों के सामने तय करना ठीक समझा ताकि सारी प्रजा को नसीहत मिल सके। जाट को बुलाया गया—"क्यों बे जाट के बच्चे ? क्या उस लड़की से तू मुहब्बत करता था ? सच-सच बोल, वर्ना तेरी गर्दन धड़ से अलग करवा दूँगा।"

"हज़ूर माई बाप। घणी खम्मा। आप की शरण में हूँ। वह लड़की खुद मुझे चाहती थी" जाट ने रोनी सूरत बना कर कहा—"मेरे बाल बच्चे नहीं होते तो मैं भी सिर काट कर मर जाता।"

"जब वह लड़की गर्भ से थी तो तूने उसे अपनी बीबी बना कर क्यों नहीं रक्खा ?" ज़ालिम ने फिर प्रश्न किया—"अगर तू उसे अपने पास रखता, तो उसकी जान तो बच जाती।"

"हज़ूर वह ब्राह्मणी और मैं जाट। ये पंडत तो मेरी खोपड़ी फोड़ देते। मुझे एक दिन नहीं जीने देते।"

"अच्छा, यह बात है" ज़ालिम ने गम्भीर होकर कहा। जात-पाँत की समस्या जटिल थी। कुछ देर के लिये वे चुप हो गए। किन्तु ज़ालिम तलवार के उपासक थे। शक्ति को ही वे नियामक मानते थे।

अतः उन्होंने दृढ़ता से अपना फैसला दिया—"आज से हमारे राज्य में जो कोई भी इस तरह की लड़कियों की मौत के लिये ज़िम्मेवार होगा उसे हम सख्त सज़ा देंगे। जब हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों में यह जायज़ है कि मर्द एक से ज्यादा औरतों से शादी कर सकता है तो फिर क्या वजह है कि कुंवारी लड़कियाँ इस तरह से मर जायें। ऐसी सूरत पैदा होने पर जात-पाँत पर कोई ध्यान न दिया जाये और अगर कोई जात-पाँत के नाम पर किसी पर ज़ुल्म करेगा तो हम उसे भी सख्त सज़ा देंगे चाहे वह किसी भी जाति का क्यों न हो।"

साथ ही उन्होंने उस जाट को तीन साल की क़ैद की सजा ठोक दी।

पाँचवाँ परिच्छेद

कोटा नगर की प्राचीर के बाहर एक लम्बा-चौड़ा तालाब है जिस के बीच में एक छोटा सा महल बना हुआ है। इस तालाब के किनारे एक अर्द्ध चन्द्राकार सड़क है जो संध्या समय बहुत सुहावनी लगती है। तालाब का पानी रोकने के लिये जो ऊँची पाल बनाई गई है उसी पाल पर यह सड़क बनी हुई है। बीच में नहाने के लिये सुन्दर घाट बने हुए हैं। नाव के द्वारा सैर करके बीच में जग-मंदिर तक लोग जाते हैं जो भोजन और गोष्ठी के लिये सुन्दर और मनोहर स्थान है।

इस पाल से नीचे हरा-भरा मैदान है जिस में अत्यन्त रमणीक बाग़ लगा हुआ है। इस उपवन को इतना सुन्दर बनाने का श्रेय भी राजराणा ज़ालिमसिंह को है यद्यपि वहाँ इतिहास के आँचल में न जाने कितने कुकर्म हुए होंगे।

उपवन के बीच में एक छोटी सी सुन्दर कोठी है जिस का नाम ब्रज विलास है और जो आमोद-प्रमोद का एक रमणीक स्थान रही

है। काका स्वरूपसिंह को एक दावत के बहाने वहाँ बुलाया गया।

स्वरूपसिंह और धाभाई (धायपुत्र) जसकरण दोनों ज़ालिमसिंह की राह में काँटे थे और उनके विरुद्ध षड्यन्त्र करते थे। दोनों गहरे मित्र थे और ज़ालिमसिंह को राज्य से निर्वासित करने के लिये उन ने स्वर्गीय महाराव गुमानसिंह को उकसाया था। राजराणा ज़ालिमसिंह अब पुनः सत्तारूढ़ थे। अतः उन दोनों का अंत करने के लिये वे उपाय सोचने लगे। धीरे-धीरे उन्होंने दोनों मित्रों में से एक को यानी धाभाई जसकरण को अपनी ओर फोड़ा और यह लालच दिया कि यदि वह स्वरूपसिंह को मार दे तो उसका न केवल ओहदा बढ़ा दिया जायेगा बल्कि भारी पुरस्कार भी दिया जायेगा। धाभाई तैयार हो गया और उसने ब्रज विलास में स्वरूपसिंह को दावत दी।

कुछ कर तक वे दोनों कोठी में इधर उधर घूम कर शिष्टाचार की बातें करते रहे। भोजन पक रहा था। ज़ालिम के कुछ लोग बाग़ में इधर-उधर सैर कर रहे थे कि यदि षड्यन्त्र सफल न हो तो उन दोनों को पकड़ कर मौत के घाट उतार दिया जाये। बाग में हरे-भरे वृक्ष बहुत सुन्दर लग रहे थे। इस उपवन का सौन्दर्य बढ़ाने के लिये ज़ालिम-सिंह ने दूर-दूर से भांति-भांति के पेड़-पौधे लगवाये थे। दक्षिण भारत से नारियल के पेड़ मँगवाकर वहाँ उगवाये थे। काश्मीर से अनेक फल-फूल मँगवा कर लगवाये थे। नीबू नारंगी, आम, जामुन, केला, शहतूत, चीकू, पपीता सब प्रकार के पेड़ पौधे उस लम्बे-चौड़े बाग़ में मौजूद थे। वसन्त ऋतु में तो वह उपवन नन्दन वन का रूप धारण कर लेता था। दूर-दूर तक दोनों ओर फूल ही फूल नज़र आते थे। गुलाब बाड़ी में चारों ओर हज़ारों गुलाब महकते थे जहाँ थोड़ी देर बैठने से ही थकान दूर हो जाती थी और भीनी-भीनी सुगन्ध से तबीयत मस्त हो जाती थी।

उपवन की शोभा दिखाने के लिये धाभाई ने बातें-बातों में एक

खिड़की से नीचे के फूलों को देखने के लिये अपने मित्र से कहा। स्वरूपसिंह को क्या पता था कि उसकी मौत उसके साथ घूम रही है। खिड़की में गर्दन देकर नीचे देखा ही था कि जसकरण ने बगल से छुरी निकाल कर पीठ में पूरी भोंक दी। थोड़ी देर तक लाश तड़पती रही और स्वरूपसिंह मर गये। स्वरूप की आह, पुकार और चिल्लाहट सुन कर नीचे से आदमी दौड़े और बात की बात में धाभाई को गिरफ्तार कर लिया गया। न तो उसे कोई पुरस्कार मिला और न उसके पद में ही कोई वृद्धि हुई। ज़ालिम ने हमेशा के लिये उसे देशनिकाला दे दिया जैसे एक बार उन्हें देशनिकाला दिया गया था। अपने परम मित्र का वध करने के कारण हत्यारे को इतना क्षोभ हुआ कि राज्य के बाहर जाते ही उसने आत्म हत्या कर ली। इस प्रकार ज़ालिम ने एक बार से दो शिकार किये।

किन्तु षड्यन्त्रकारियों का अभी अन्त नहीं आया था। बल्कि इस घटना के कारण जालिम का विरोध और अधिक बढ़ गया। वे भी अपने गुप्तचरों को समाचार लाने के लिये तैयार रखते थे। एक षड्यंत्र ऐसा चुपचाप किया गया कि उस का ज़ालिम को भी पता न लगा।

कुछ साहसी राजपूतों ने राजराणा को भरे दरबार में चौड़े-धाड़े सब के सामने क़त्ल करने की योजना बनाई। चोरी छिपे तो गीदड़ भी शेर को घेर सकते हैं लेकिन मर्द वह है जो पहले कंकर मार कर शेर को जगाये और फिर उससे मुक़ाबला करे। षड्यन्त्रकारियों का जो सरदार था उसका नाम था बहादुरसिंह। बड़ा हौसलेमन्द बहादुर था और तलवारबाज़ी में बहुत तेज़ था। षड्यन्त्र की कानोंकान खबर न हुई।

परन्तु राजराणा का सितारा अभी बुलन्द था। भाग्य में बहुत दिन जीना बदा था। घटना से सिर्फ तीन घण्टे पहले एक भेदिये ने

आकर खबर दी कि आज भरे दरबार में आप पर हमला होने वाला है। ज़ालिम पीछे हटने वाले न थे। न तो वे डरे और न घबराये। चेहरे पर चिन्ता की शिकन तक न आई। अपने विश्वस्त अंगरक्षकों को उन्होंने सचेत कर दिया और सादा पोषाक में उनके आस-पास छिपे रहने का आदेश दिया। स्वयं भी यथावत् ढाल तलवार बाँध कर तैयार हुए।

राजदरबार बदस्तूर लगा। नवयुवक महाराव उम्मेदसिंह सिंहासन पर विराजमान हुए। सरदारों में पान सुपारी बँटने के बाद नर्तकी का नृत्य आरम्भ हुआ। कोकिल स्वर से उसने माँड अलापना शुरू किया। "केसरिया बालम! आवो ने पधारो म्हारे देस।" गणिका अपने हाव-भाव दिखाने लगी। नाचते-नाचते आधे दरबार तक चली जाती थी और फिर घूमर देकर वापस अपने स्थान पर लौट आती थी। पगड़ियाँ बाँधे हुए सरंगिया और तबलची दाँये-बाँये खड़े थे। नृत्य की ताल के साथ तबले पर ढेका बज रहा था। सरंगिया सिर हिलाता हुआ अपनी सूँत में मस्त था। जब गणिका का स्वर अधिक कोमल होता था तब एक भाँड अपने मसखरे स्वर में ताली पीट कर उसकी दाद देता था। उसकी भड़ैती में भी कई बरसों तक सीखी हुई कला निहित थी। उसकी समस्त ध्वनि सधी हुई थी और वह हास्यप्रद होते हुए भी गम्भीर थी। जब नर्तकी नाचती हुई लौट आती थी तो वह भी अत्यन्त कलापूर्ण ढंग से ठुमक-ठुमक कर नाच आता था। उसके पाँवों में में बँधे हुए घँघरू की रुनझुन से समस्त वातावरण झंकृत हो उठता था।

सब दरबारियों की नज़रें वेश्या के मनमोहक हाव-भाव की ओर आकृष्ट थीं कि सहसा तलवारें खिंचीं। वीरों ने ललकारा। सभासद उठ खड़े हुए। नर्तकी ठिठक कर खड़ी हो गई। ढोल तम्बूरे नीचे जा पड़े। भाँड अपी भड़ैती भूल गया और नर्तकी अपना नृत्य। कुछ लोगों

के मुँह फक हो रहे थे और कुछ की आँखें क्रोध से लाल हो रही थीं।

बात की बात में चार छः वीर नंगी तलवारें लिये हुए आगे बढ़े जालिम-सिंह ने तलवार नहीं निकाली और शान्तिपूर्वक खड़े रहे जैसे कुछ हुआ ही नहीं। किन्तु उनके अंगरक्षक अपनी तलवारें मियान से बाहर निकाल चुके थे जिन्होंने ज़रा सी देर में तीन-चार आदमियों का सिर काट दिया। सभा में लाशें तड़पने लगीं। खून बहने लगा। गिरोह का नेता बहादुरसिंह तलवार चलाता हुआ बच निकला और एक सजे हुए घोड़े पर चढ़ कर भाग गया। राजदरबार भंग हो गया। राजराणा के आदेश से अश्वारोहियों ने विद्रोही का पीछा किया। भागते-भागते बहादुरसिंह पाटन में केशवराय के मंदिर मे जा घुसा। कोई भी अपराधी जब तक इस मंदिर के भीतर रहता था तब तक उस पर हाथ उठाना या उसे बन्दी बनाना धर्मविरुद्ध समझा जाता था। जो भगवान् की शरण में हो उस पर आक्रमण कैसा? किन्तु जालिमसिंह ने धर्म को एक तरफ पटका और उसे गिरफ्तार करने का आदेश दिया। बहादुरसिंह पकड़ लिया गया और उसका सिर काट दिया गया।

×

छठा परिच्छेद

मेवाड़ के मंच पर दृश्य जल्दी-जल्दी बदल रहे थे। न जाने किस अभिशाप से बाप्पा रावल की पवित्र भूमि पापियों का क्रीड़ास्थल बनी हुई थी। चूंडावतों और सक्तावतों के झगड़ों का कभी अन्त ही नहीं आता था। वे बिगड़-बिगड़ कर भी पनपते रहते थे। राजराणा जालिमसिंह को यद्यपि मेवाड़ छोड़े कई वर्ष हो गए थे तथापि उन की आँखें बराबर उधर ही लगी रहती थीं।

हिन्दुआसूर्य का राजमुकुट आकर्षण का अद्भुत केन्द्र था जिसे देख कर बड़े-बड़े राजभक्त सामन्तों की आँखें चौंधिया जाती थीं। मुंह में पानी भर आता था। सूर्यवंशी महाराणा साक्षात् ईश्वर के प्रतिनिधि समझे जाते थे। एक बार महाराणा राजसिंह (प्रथम) के समय वर्षा काल में सूर्य व्रत करने वाली स्त्रियों ने कुछ दिन तक सूर्य के छिपे रहने पर राजा सूर्य के वंशज उन सूर्यवंशी महाराणा के दर्शन कर के ही अपना व्रत तोड़ा था। महाराणा की माँ ने बाद में कहा—"बेटा, तुम धन्य हो, तुम्हारा चरित्र धन्य है।" इस पर पुत्र

ने कहा—"नहीं माँ, उन स्त्रियों में नगर सेठ की पुत्रवधू को मैंने बुरी नज़र से देखा।"

"छि: छि:, पराई स्त्री तो माँ होती है बेटा" कहकर उनका माँ ने नमक के पानी से उनकी आँखें धोई थीं।

अस्तु, मेवाड़ का राजमुकुट भारत का सबसे अभिमानी राजमुकुट था जो तत्कालीन विश्व के सबसे प्रबल सम्राटों के आगे भी नहीं झुक सका था। सैंकड़ों वर्षों के संघर्ष के बाद भी अभागा मेवाड़ अपनी स्वतंत्र पताका के कारण विजेताओं की आँखों में खटका करता था। कितने हमले हुए—अरब आये, राजा भोज, अलाउद्दीन खिलजी, राठौड़ रणमल्ल, बाबर, बहादुरशाह, हुमायूँ, अकबर और औरंगज़ेब ने भी उसे चैन नहीं लेने दिया। मुग़ल साम्राज्य का दिवाला पिटने पर बाजीराव पेशवा और तत्पश्चात् माधोजी सिंधिया और राजराणा ज़ालिमसिंह ने भी उस पर अपने दाँत गड़ा दिए।*

चित्तौड़ का जय-स्तम्भ ज़ालिम की आँखों के आगे नाचता था और विलीन हो जाता था। आखिर जालिम ने कोटे का प्रजा को क्यों इतना सताया, क्यों इतना रक्त चूसा, क्यों इतने कर लगाए? इसलिए कि उस धन से एक ओर तो वे मराठों को शान्त रक्खें और दूसरी ओर अपनी सैन्य शक्ति बढ़ा कर मेवाड़ पर कब्ज़ा कर सकें।

किसी समय मेवाड़ में राजराणा का ही बोलबाला था। उज्जैन की पराजय ने उन के मन्सूबों पर पानी फेर दिया वर्ना वे अब तक न जाने क्या से क्या बने होते। फिर भी उन की हिम्मत पस्त नहीं हुई और वे उपयुक्त अवसर की ताक में थे कि कब मौक़ा मिले और कब वे अपनी सेना को ले कर मेवाड़ में जा कूदें।

कुछ वर्ष पहले अहेरिया उत्सव पर बूंदी के राजकुमार अजीतसिंह

---

* पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी गाड़ी लुहारों को पुन: बसाने के लिए चित्तौड़ में प्रवेश किया था।

ने महाराणा अड़सी को मार दिया था। एक बार अहेरिया उत्सव पर ही राणा प्रताप और शक्तिसिंह में झगड़ा हुआ था। अहेरिया का दिन मेवाड़ के इतिहास में बहुत बुरा रहा है। कुछ लोग कहते थे कि मेवाड़ के कुछ सरदारों ने बूँदी के राजकुमार को उकसाया था क्योंकि वे सरदार अड़सी से अप्रसन्न थे और कुछ कहते थे कि यह वध हाड़ा-सीसादियों की परम्परागत कलह का परिणाम था। एक बार बहुत पहले भी बूंदी के राव हामा ने महाराणा मोकल को मारा था। जो भी हो, अड़सी के देहान्त के बाद उनके द्वादश वर्षीय पुत्र महाराणा हम्मीर गद्दी पर बैठे। शासन की बागडोर अब राजमाता के हाथ में आ गई।

राजस्थान में एक परम्परा यह भी रही है कि पति के अयोग्य होने पर या पुत्र के अबोध होने पर राज-काज क्रमशः महारानियों और राज-माताओं ने सँभाला है। कुछ स्त्रियाँ उस युग में भी विदूषी और अत्यन्त चतुर होती थीं किन्तु कुछ अक्खड़, ईर्ष्यालु, अत्यधिक घमण्डी, अनपढ़ और अनभिज्ञ भी हुई हैं। एक ओर जहाँ जोधपुर के राजा जसवन्तसिंह की वीर पत्नी रानी कर्मवती हुई है वहाँ दूसरी ओर पोपाँबाई नाम की एक बदहवास रानी भी हुई है जिस के राज्य में बड़ी पोल पट्टी थी। लाखों रुपये तो लोगों को खिलाने-पिलाने में खर्च होते थे। उस की रसोई चौबीस घंटे चलती रहती थी। इसी प्रकार मेवाड़ की राजमाता भी मन्थरा जैसी एक कुटिल दासी के कुचक्र में पड़ गई। वह दासी रनिवास में जाकर उन्हें झूठ सच सुनाया करती थी और बुद्धू बनाया करती थी। उस दासी पर उस का एक तुच्छ प्रेमी हुकूमत करता था जो अपने आप को मेवाड़ का असली शासक समझता था। दीवान अमरचन्द बरवा को एक काल रात्रि में यमपुर की ओर भेज दिया गया था।

कुछ समय बाद दुर्भाग्यवश महाराणा हम्मीर भी अकाल मृत्यु से स्वर्ग सिधारे और उन के छोटे भाई महाराणा भीमसिंह का राज्याभिषेक

हुआ। इन्हीं भीमसिंह की अभागी कन्या रूपमती कृष्णा कुमारी थी जिन्हें जयपुर और जोधपुर की सेना आ जाने पर ज़हर पिलाया गया था।

महाराणा हम्मार के समय से ही चूंडावतों का पल्ला भारी हो चला था। अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते हुए उन्होंने सक्तावतों का दमन आरम्भ किया। अनेक प्रकार से सक्तावत राजपूत सताये जाने लगे। किसी की ज़मीन छीन ली गई तो किसी पर जुर्माना कर दिया गया। यदि मेवाड़ी वीर इस प्रकार आपस में न लड़ कर एक हो गये होते तो मुग़ल साम्राज्य की उस अवनत और दुर्बल अवस्था में वे उत्तरी भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर सकते थे। किन्तु इतिहास दूसरी ही ओर मुड़ रहा था। राजपूतों को आपस की कलह से ही फुर्सत नहीं थी। उस ने मूँछ तानी तो क्यों तानी। उस ने गाली दी तो क्यों दी। संसार की वीर से वीर जातियाँ बेवकूफ़ से बेवकूफ़ जातियाँ भी रही हैं।

चूंडावतों से टक्कर लेने के लिये सक्तावतों का सरदार संग्रामसिंह बड़ा योग्य और बहादुर आदमी था। उस ने महाराणा भीमसिंह पर अपना प्रभाव डाला जो स्वयं अपने आप को चूंडावतों के प्रभुत्व से मुक्त करना चाहते थे। महाराणा को अपनी ओर खीचते ही सक्तावतों की चढ़ बनी।

बस इसी अवसर की ताक में राजराणा ज़ालिमसिंह अब तक चुप्पी साधे बैठे थे। उन का स्वप्न फिर उनकी आँखों पर झूलने लगा। अपने रिश्तेदारों को उन्होंने चूंडावतों के विरुद्ध भड़काया और उन का निमंत्रण पाकर कोटे से दस हज़ार सैनिकों को लेकर मेवाड़ जा पहुँचे।

ज़ालिम के आगमन से चूंडावत बहुत झल्लाये। आपस के मामले में झाला दाल भात में मूसलचन्द की तरह क्यों दख़ल देते हैं? उन्होंने तेज़ी से अपनी शक्ति बढ़ाना आरम्भ किया और कुछ ही

दिनों में रामपुरा, सिंगौली और बेगूं पर कब्ज़ा कर लिया। तदुपरान्त यशस्वी चित्तौड़ पर भी उनकी ध्वजा फहराने लगी। उन्हीं दिनों माधो जी सिंधिया की सेना जयपुर और जोधपुर की संयुक्त सेना से लालसोट के युद्ध में बुरी तरह परास्त हो चुकी थी और सिंधिया का दबदबा काफी कम हो गया था। चोट खाया हुआ सिंधिया मित्रों की खोज में था। इधर ज़ालिम भी अपना पक्ष दृढ़ कर रहे थे।

महाराणा भीमसिंह से अनुमति ले कर ज़ालिमसिंह ने सिंधिया से मिलने की ठानी। सिंधिया का पड़ाव उस समय पुष्कर में था। पच्चीस घुड़सवारों को साथ लिये हुए ज़ालिमसिंह ने अपना घोड़ा सिंधिया के डेरे के आगे जा खड़ा किया। सूचना मिलते ही सिंधिया ने तुरन्त बुलवाया और राजपूती प्रणाली से बगलगीर हुआ—पहले दायाँ कंधा मिलाया और फिर बायाँ। शिष्टाचार की बातों के बाद ज़ालिम ने कहा—"आप के पास हिन्दुआ सूर्य का संधि-संदेश लाया हूँ। आप हमारे मित्र तो हैं ही, इस समय सहायक भी बनने की कृपा करें। उधर हम आप को जयपुर और जोधपुर के विरुद्ध सहायता देंगे।"

"हमें क्या आपत्ति हो सकती है राजराणा जी" सिंधिया बोला—"हम तो मेवाड़ के उसी समय से हितैषी हैं जब से हम ने अमरचन्द बरवा के साथ संधि पर हस्ताक्षर किये थे।"

"मुझे सब याद है महाराज! उस समय मैं आपका बन्दी था।"

"ओह, यह तो हम भूल ही गये। हमारा सौभाग्य था कि आप हमारे मेहमान रहे। हमारी ओर से अतिथि सत्कार में कोई कसर तो नहीं रही?"

"मुझे आप का अहसान अब तक याद है महाराज" ज़ालिम ने कहा—"मैंने मुक्त होते समय कहा था कि किसी दिन इस अहसान का बदला लाखों रुपयों से चुकाऊँगा। सो आज वह दिन आ गया है।"

"हम आप की सहायता के लिये तैयार हैं राजराणा जी। किन्तु मुझे पहले जोधपुर की तरफ जाना है। लालसोट की हार से मेरा दिल अब तक जल रहा है। ज़िन्दा रहा तो जोधपुर से चौथ वसूल करके ही आप से मिलूँगा। तब तक आप अम्बा जी इंग्ले के साथ मेरी कुछ सेना ले जाइये और चूंडावतों की जागीरों को कुचलते हुए आगे बढ़िये। मैं जोधपुर होता हुआ चित्तौड़ आऊँगा। ईश्वर ने चाहा तो जल्दी ही हमारी भेंट होगी।"

"जैसी आप की इच्छा" ज़ालिमसिंह ने कहा—"आप हमारी ओर से निश्चिन्त रहिये। हम अपनी बात पर अटल हैं। अच्छा, मैं अम्बा जी के साथ आगे बढ़ता हूँ।"

दोनों विदा हुए। सिंधिया को अपनी ओर मिला लेना ज़ालिम-सिंह की बहुत बड़ी जीत थी। यह वही सिंधिया था जिस से उन्होंने उज्जैन में घनघोर युद्ध किया था। मेवाड़, कोटा और ग्वालियर इन तीन राज्यों की सेना मिल जाने से भारतवर्ष में सब से अधिक शक्ति-शाली दल बन गया था। यदि ज़ालिमसिंह दूरदर्शिता से काम लेते तो इस सैन्यदल से समस्त भारत पर प्रभुत्व स्थापित कर सकते थे किन्तु उनका स्वप्न दूसरा ही था। वे राजराणा से महाराणा बनने की सोच रहे थे। राजपूतों में सब से गौरवान्वित स्थान महाराणा का था। मेवाड़ के सिंहासन तक पहुँचने से पहले चूंडावतों को कुचलना आवश्यक था और फिर चित्तौड़ पर अपनी पताका फहराना। सिंधिया की सहायता मिलने से ज़ालिम की आकांक्षा बलवती हो गई। ज़ालिम के इस स्वप्न का किसी को पता न था—न सिंधिया को और न महाराणा को। शतरंज को मोहरों की भाँति ज़ालिम अपने सैनिकों और साथियों को अभीष्ट सिद्धि के लिये इधर-उधर जमा रहे थे और किसी को ख़बर न थी कि मात किस जगह होगी। केवल एक व्यक्ति ऐसा था जो ज़ालिम की इन सब चालों को समझ रहा था और वह

था उनका अंतरंग मित्र अम्बाजी इंग्ले।

इंग्ले और ज़ालिम ने निश्चय किया कि पहले चित्तौड़ फतह किया जाये। रास्ते में चूंडावतों की जितनी जागीरें आयें उन्हें खूब लूट. जाये और जो लगान उन्होंने अब तक मेवाड़ को नहीं दिया है वह भी पाई-पाई वसूल किया जाये। मेवाड़ और कोटे की सेना ज़ालिमसिंह के नेतृत्व में और सिंधिया की फौजी टुकड़ी इंग्ले के नेतृत्व में आगे बढ़ी। सबसे पहले हम्मीरगढ़ पर हमला बोला गया।

वीर चूँडावत इतनी आसानी से काबू में आने वाले नहीं थे। हम्मीरगढ़ कई दिनों तक तोपों की टक्कर झेलता रहा। दोनों ओर से अस्त्र चलते रहे। अंत में ज़ालिम ने पानी बन्द करके उन्हें सताया। कुओं की मुंडेरें तोपों से फोड़ दीं। सारे कुएँ रेत, मिट्टी और पत्थर से भर गये। अन्त में जल के अभाव से विवश होकर चूड़ावतों ने दुर्ग का द्वार खोल दिया और केसरिया कपड़े पहन कर युद्ध में जूझ गये।

ज़ालिम ने वहाँ के धन-धान्य को खूब लूटा। इसी प्रकार रास्ते के दो तीन अन्य दुर्गों को लूटते-खसोटते हुए, जीत के नक्कारे बजाते हुए ज़ालिम ने चित्तौड़ को जा घेरा। चूँडावतों की शक्ति का वही सब से बड़ा केन्द्र था। चित्तौड़ को जीतना हँसी-खेल नहीं था। उसके लिये हज़ारों योद्धाओं के बलिदान की आवश्यकता थी।

राजराणा को गुप्तचरों से सूचना मिली कि जोधपुर नगर को लूटता हुआ और वहाँ से चौथ वसूल करता हुआ माधो जी सिंधिया तेजी से चित्तौड़ की ओर बढ़ता आ रहा है। वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसके आगमन की प्रतीक्षा की क्योंकि उसकी सेना आ जाने पर चित्तौड़ को जीतना निश्चित ही था। उस समय फ्रांसीसी जनरल डि बोइन और उसके गोलन्दाज़ भी सिंधिया के साथ थे।

अपनी विशाल सेना लेकर सिंधिया जब चित्तौड़ के पास आया

तो गर्व से उसकी छाती फूल उठी—"अरे, क्या यही वह अभिमानी चित्तौड़ है जिस ने बड़ी-बड़ी सेनाओं की टक्कर झेली है ? क्या इसी चित्तौड़ में पद्मिनी रहती थी ? आज अपनी वीर वाहिनी से मैं इस चित्तौड का गर्व चूर चूर कर दूँगा और भारत के इतिहास में अपना नाम अमर कर दूँगा।"

"मदान्ध होकर सिंधिया ने ज़ालिम से कहलाया—"इससे पहले कि हमारी सेना मेंवाड़ की सहायता करे, हम यह चाहते हैं कि महाराणा स्वयं हमारे आगे उपस्थित हो। हम उनसे मिलना चाहते हैं।"

इस प्रस्ताव से राजपूतों को गहरी ठेस लगी। जिस महाराणा के पूर्वजों ने अकबर जैसे प्रतापी सम्राट् के सामने जाने से इन्कार कर दिया क्या उन्हीं महाराणा को सिंधिया से भेंट करने के लिये आना पड़ेगा। एक बार बाजीराव पेशवा ने भी ऐसी धृष्टता की थी किन्तु उसने महाराणा को उच्च आसन पर बिठाया था और स्वयं नीचे के के आसन पर बैठ कर पंखा हाथ में लेकर अपनी शालीनता और हिन्दुआ सूर्य के प्रति सम्मान का परिचय दिया था। सिंधिया का रवैया इतना शिष्ट न निकला। वह तो बराबर के आसन पर बैठकर दो दो बातें करना चाहता था और अपनी सैन्य शक्ति के अहंकार से महाराणा को लज्जित करना चाहता था।

इस प्रस्ताव से ज़ालिमसिंह भी खिन्न हुए। किन्तु करते क्या ? अपने हाथों ही सारा खेल किया था। परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए वे महाराणा से मिले और उन्हें भेंट के लिये तैयार किया। वहाँ से कुछ कोस दूर नाहरा नामक स्थान पर दोनों शासकों की भेंट का प्रबन्ध किया गया।

पहले सिंधिया आया और घोड़े से उतर कर अपने आसन पर अकड़ कर बैठ गया। उसके सेवक पीछे से चँवर डुलाने लगे। कुछ

ही देर बाद महाराणा का हाथी आ पहुँचा। चोबदार बोलने लगे। सिंधिया अपने आसन पर बैठा रहा। उसकी कसी हुई पगड़ी पर तुर्रा लगा हुआ था। माथे पर रक्त चंदन का त्रिपुण्ड था। बड़ी-बड़ी मूँछें ठीक ढंग से मुड़ी हुई थीं।

शामियाना सजा हुआ था। लाल पट्टी बीच में बिछी हुई थी। महाराणा के लिये बराबर में गद्दी लगी हुई थी। दोनों गद्दियों के पास सामने मखमल का एक छोटा सा क़ालीन था जहाँ राजराणा ज़ालिम-सिंह को बैठना था। गद्दियाँ ज़मीन से करीब एक एक हाथ ऊँची थीं।

महारणा जब कुछ समीप आये तो सिंधिया ने खड़े होकर ताज़ीम दी और बोला—"जै शंकर की राणा जी।"

"जै शंकर की, सिंधिया जी।"

गद्दी से ज़रा सा आगे बढ़ कर सिंधिया बगलगीर हुआ और आदर से महाराणा को उनकी गद्दी पर बिठलाया। पासबानों ने दोनों की छाती पर इत्र लगाया जिससे अँगरखे महकने लगे। चँवर ढुलने लगे। पान सुपारी की मनुहार की गई और विचार विमर्श चलने लगा। सामने ज़ालिमसिंह बैठ गये। सिंधिया अपने सैन्य बल के गर्व से फूल कर कुप्पा बना हुआ था और यदा कदा मूँछ पर उसका हाथ अनायास ही चला जाता था।

बातें करते करते माधोजी ने कहा—"देखिये राणाजी! चित्तौड़ वह दुर्ग है जिसे जीतने के लिये महाराणा प्रताप जैसे वीर पुरुष आजीवन युद्ध करते रहे किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। चित्तौड़ मेवाड़ की ही नहीं सारे भारत की शान है क्योंकि इसके लिये बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ लड़ी जा चुकी हैं। यदि मैं इसी चित्तौड़ को अपने सैन्य बल से जीत कर आप को दे दूँ तो इसके बदले आप मुझे क्या देंगे?"

"जो आप मुझ से माँग लें" महाराणा ने कटाक्ष करते हुए कहा। चित्तौड़ के नाम से ही अतीत के सारे चित्र उनकी आँखों के आगे घूम गये।

"शाबाश राणा जी, मैं आपकी उदारता से बहुत प्रसन्न हूँ। मुझे सिर्फ बीस लाख रुपया चाहिये।"

"स्वीकार है।"

"बस तो फिर रणभेरी बजवाइये" सिंधिया ने कहा।

"आज ही लीजिये" ज़ालिमसिंह ने सुझाव दिया, "शुभ कार्य में देर नहीं करनी चाहिये।" शिष्टाचार की बातों के बाद ज़ालिमसिंह और महाराणा ने विदा ली।

जिस समय महाराणा और सिंधिया की नाहरा में भेंट हो रही थी उस समय चित्तौड़ में दूसरा ही नाटक खेला जा रहा था। अम्बा जी इंग्ले गुप्त रूप से दुर्ग मे प्रवेश कर गया और दुर्गपति के पास जाकर बोला—"सरदार चूँडावत! अपनी जान इतनी सस्ती न गँवाओ। याद रक्खो, सिंधिया की तोपों से आप का और आपके साथियों का कचूमर निकल जायेगा। चित्तौड़ का किला शमशान बन जायेगा। इससे भी भयंकर परिणाम तो युद्ध के बाद निकलेगा। जानते हो क्या होगा? ज़ालिमसिंह मेवाड़ में सर्वेसर्वा बन जायेगा। कोटा और मेवाड़ की संयुक्त सेना से उसके पास इतनी शक्ति आ जायेगी जिसकी टक्कर न राजपूत झेल सकेंगे और न मराठे और आप सब चूँडावतों का सिर ज़ालिमसिंह इस तरह फोड़ेगा जैसे भाड़ में चना फोड़ा जाता है। आप के सिर काट कर इसी चित्तौड़ की दीवारों पर लटका दिये जायेंगे।"

उस भयंकर स्थिति का ध्यान करके चूँडावत काँप उठा। वह जानता था कि इतनी सेना से जूझने का उस में सामर्थ्य नहीं है। वह बोला—"मैं महाराणा से क्षमा याचना करने को तैयार हूँ लेकिन मज़ा तो तब है मेरे दोस्त, जब आप और हम मिल कर ज़ालिमसिंह का पत्ता काट दें।"

"शाबाश सरदार चूँडावत। अब आप सारी बात समझ पाये हैं" इंग्ले ने कहा--"ज़ालिमसिंह अपने आप को बहुत चतुर समझता है लेकिन

उसे पता नहीं कि अम्बा जी, उसका भी गुरू है। अगर हम अपनी चाल में कामयाब हो गये तो फिर मेवाड़ पर हमारी हुकूमत चलेगी, ज़ालिम की नहीं। समझे ?"

"समझ गया इंग्ले जी ! अच्छी तरह समझ गया। मैं वादा करता हूँ कि आपकी पूरी सहायता करूँगा।"

'अच्छा तो फिर बात पक्की रही।"

"बिल्कुल पक्की"

"अच्छा जै शंकर की। बाक़ी सारा काम मैं बना लूँगा" कह कर इंग्ले लौट आया।

जब महाराणा और राजराणा चित्तौड़ के पास अपने शिविर में पहुँचे तो इंग्ले सेवा में उपस्थित हुआ और महाराणा से बोला "पृथ्वीनाथ ! मुझ से सरदार चूँडावत के एक दूत ने आकर कर कहा है कि सरदार चूँडावत अपने अपराधों की क्षमा चाहता है और बीच दरबार में आकर आपके चरण छूना चाहता है। व्यर्थ में हजारों सीसोदिया वीरों का रक्त न बहाइये और अपनी जाति को तथा अपने राज्य को सर्वनाश से बचा लीजिये। इस चित्तौड़ में अब तक जो लाखों आदमी मरे हैं वे ही काफी हैं। जब चूँडावत खुद हाथ जोड़ रहा है और आपकी शरण में आ रहा है तो फिर उसकी रक्षा करना और उसे अभयदान देना महाराणा का सनातन धर्म है।"

"हम तैयार हैं" महाराणा ने प्रसन्न होकर कहा—"हम तो स्वयं अपनी जाति का नाश नहीं चाहते। जब वे चित्तौड़ हमें सौंपने को तैयार नहीं थे तभी तो हम यहाँ अपनी सेना लाये हैं। यह तो बड़ी खुशी की बात है कि बिना खून की एक बूँद बहाये हमें चित्तौड़ मिल जायेगा। चूँडावत जी से कह दो कि वे हमारे पास आ जायें।"

"किन्तु महाराज उनकी एक छोटी सी बिनती है। आप तो जानते ही हैं कि चूँडवतों का झाला ज़ालिमसिंह से बैर है और यह सक्तावतों

के सम्बन्धी हैं" इंग्ले ने ज़ालिमसिंह की ओर संकेत करके कहा—"इस लिये सरदार चूँडावत कहते हैं कि झालाजी के रहते मैं पाँव नहीं छूऊँगा क्योंकि यह झगड़ा तो सीसोदियों का आपस का झगड़ा है। झाला जी व्यर्थ ही कोटे से यहाँ पधार कर क्यों हस्तक्षेप करते हैं। बस यही उनकी आपत्ति है।"

यह सुन कर ज़ालिम की छाती पर साँप लोट गया। मराठे की कूटनीति से आहत होकर वे खून की घूँट पी कर रह गये। लेकिन स्वाभिमानी राजपूत ने अपने चेहरे पर शिकन तक न आने दी। स्वाभिमान ही राजपूत का सब से बड़ा गुण है और स्वाभिमान ही राजपूत की सब से बड़ी कमज़ोरी। यदि उस समय राजपूत की जगह कोई अन्य राजनीतिज्ञ होता तो फौरन झुक जाता, महाराणा के पाँव पकड़ लेता और कहता—'आप तो मेरे स्वामी हैं, अन्नदाता हैं। आप को छोड़ कर कहाँ जाऊँ। आप की सेवा करते-करते ही मैं अपना जीवन बिताना चाहता हूँ। कोटे से चल कर अब तो मैं आप की ही शरण में आ आ गया हूँ।" और फिर महाराणा तो उस समय तक ज़ालिम की मुट्ठी में थे। उनकी आँखों के आगे ही इंग्ले दाना फेंक रहा था।

किन्तु नहीं। स्वाभिमानी राजपूत ने अपनी मुट्ठी में आये हुए पक्षी को मुक्त कर दिया जब उन्हें मालूम था कि इस पक्षी को अब एक दूसरा व्यक्ति फाँस रहा है। उन्होंने अकड़ कर कहा—"महाराणा साहिब! मैं हमेशा इज्ज़त से रहना चाहता हूँ। बेइज्ज़ती के बजाय मैं मर जाना अच्छा समझता हूँ। अगर चूँडावतों को मेरा मेवाड़ में रहना खटकता है तो मैं आज ही चला जाता हूँ। मैं नहीं चाहता कि मेरी वजह से इस पवित्र मेवाड़ भूमि पर हज़ारों सीसोदियों का रक्त बहे। जब सरदार चूँडावत ने बिना लड़े अपने हथियार पटक दिये हैं तब इस से बढ़ कर जीत मेरे लिये और आप के लिये क्या हो सकती है। महाराज

सिंधिया से और पूछ लो।"

अम्बा जी को स्वाभिमानी ज़ालिम के इस उत्तर की पहले ही आशा थी। मन में तो उसके लड्डू फूट रहे थे किन्तु बनावटी सहानुभूति दिखाता हुआ वह बोला—"वास्तव में आप के पधारने से हमें बहुत दुःख होगा। किन्तु जब आप की ऐसी इच्छा है तो फिर हम आप के मार्ग में कोई विघ्न नहीं डालना चाहते। हाँ, मैं महाराज सिंधिया से और पूछे लेता हूँ।" यह कह कर इंग्ले घोड़े पर चढ़ा और सिंधिया के शिवर की ओर दौड़ा।

ज़ालिमसिंह ने सोचा था कि सिंधिया को जो बीस लाख रुपये देने की बात पक्की हुई है उसके कारण वह राज़ी नहीं होगा और इंग्ले के प्रस्ताव को ठुकरा देगा। परन्तु मराठे ने कोई कच्ची गोलियाँ नहीं खेली थीं। उस ने इस प्रश्न का हल पहले ही सोच लिया था।

सिंधिया ने जब बीस लाख रुपये की बात कही तो अम्बा जी ने अपनी पैतृक सम्पत्ति में से बीस लाख रुपये सिंधिया के नाम लिख दिये। मराठा अपनी जान पर खेल गया। सिंधिया बहुत प्रसन्न हुआ। रुपये भी मिल गये और एक सिपाही भी नहीं मरा।

इंग्ले बोला—"महाराज! यदि ज़ालिम को मेवाड़ से बाहर न किया तो वह शक्तिशाली बन कर किसी दिन हमारी छाती पर मूँग दलेगा।"

अनिष्ट की आशंका से सिंधिया तुरन्त सावधान हो गया और बोला—"ठीक कहते हो अम्बा जी। आग लगने से पहले ही कुआँ खोद लेना चाहिये।"

इंग्ले ने लौट कर सिंधिया का पैग़ाम महाराणा को सुना दिया। ज़ालिम की छाती ईर्ष्या से जल उठी किन्तु चेहरे पर बिना किसी

शिकन के वे निस्संकोच भाव से तुरन्त उठ खड़े हुए और ज़ोर से "जै गोर्धननाथ की" कह कर उन्होंने अपना दाहिना हाथ उठाया और वहाँ से चल दिये। अलबत्ता घोड़े की रक़ाब पर पाँव रखते समय उन्होंने ये शब्द अवश्य कहे—"व्यंबकराव का बेटा मेरे साथ विश्वास-घात करेगा इसकी मुझे स्वप्न में भी आशा नहीं थी।"

ज़ालिम का स्वप्न चूर-चूर हो गया। सारे अरमान राख हो गये। उनके हृदय की दशा उस समय एक ऐसे शीशे की तरह थी जो टुकड़े-टुकड़े हो कर भी चौखटे में लगा हुआ था। घोड़ा दौड़ रहा था और मन में निराशा की लहर दौड़ रही थी। अपनी असफलताओं के चित्र एक के बाद एक आँखों के आगे गुज़र रहे थे—कोटे से निकले, उज्जैन में गिरफ़्तार हुए, मेवाड़ से निकले और दस बरस के अथक परिश्रम के बाद जो ताक़त बढ़ाई थी वह किसी काम नहीं आई। उन्हें मेवाड़ से फिर धक्का दे दिया गया। जाते समय किसी ने उन्हें पूछा तक नहीं। वह इंग्ले जिसे वे अपना छोटा भाई समझते थे, जिस के साथ रात दिन का उठना-बैठना था, वही इंग्ले आस्तीन का साँप बन गया और काटा भी इस तरह कि पता नहीं चलने दिया। क्षोभ से उनकी आँखों में आँसू छलछला आये। लगाम हाथ में थी किन्तु मन की लगाम को निराशा ने थाम लिया था।

उधर ज़ालिम के आँखों से ओझल होते ही सरदार चूँडावत चित्तौड़ से बाहर निकला। भरे दरबार में जाकर उसने महाराणा के चरण छुए और हाथ जोड़ कर विधिवत् ढंग से अपने अपराधों की क्षमा माँगी। वस्तुतः वह क्षमा तो थी नहीं, महाराणा के सिर पर चढ़ने की तैयारी थी। इंग्ले की कूटनीति का वही परिणाम निकला जिस की आशा थी। पूरे आठ वर्ष तक मेवाड़ में उसका बोल-बाला रहा। सरदार चूंडावत को प्रधान मन्त्री बनाया गया। उसने सक्तावतों का डट कर दमन किया और उनके अंजर-पंजर ढीले कर दिये। रुपया

भी खूब खसोटा और किसानों पर डंडे भी खूब बजाये। सैकड़ों सक्तावतों की ज़मीनें नीलाम कर दी गईं। इस दमन कार्य के साझे में दस लाख रुपये अम्बा जी इंग्ले को मिल गये। मेवाड़ में रहकर उसने बहुत धन जोड़ लिया और वह भारत का एक प्रसिद्ध सेठ बन गया। आठ वर्ष उपरान्त उसका भाग्य नक्षत्र और अधिक चमका और माधो जी सिंधिया ने उसे समस्त उत्तरी भारत में अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया।

सातवाँ परिच्छेद

फ़ौज की छावनी पड़ी हुई है। कुछ महीनों से एक घाटी में निर्माण कार्य चल रहा है। सैकड़ों मज़दूर एक छोटा सा नगर बनाने में जुटे हुए हैं। आस-पास की झाड़ियाँ और पेड़ काट कर मैदान साफ़ कर दिया गया है। कुछ मकानों की नींव खोदी जा रही है। रात दिन काम चल रहा है। मज़दूरों ने एक ओर अपनी झोंपड़ियाँ बना ली हैं।

प्रातःकाल सर्दी के कारण कुछ बुड्ढे लोगों ने झाड़-झंखाड़ इकट्ठे कर आग जला रक्खी है और सर्दी से छुटकारा पाने के लिए दोनों हाथ आगे करके ताप रहे हैं। कुछ चिलम पी रहे हैं, कुछ गप्पें लड़ा रहे हैं। कुछ शिकार खेलने और गोश्त पकाने की बातें कर रहे हैं। पिंजरों में तीतर बोल रहे हैं मुर्गे मुर्गी इधर उधर कीड़े-मकोड़े खाते फिर रहे हैं। एक ओर घोड़े और ऊँट बँधे हुए हैं। कुछ साईस घोड़ों पर खुर्री फेर रहे हैं। ऊट अपनी लम्बी टाँगें सिकोड़े हुए भूसा खा रहे हैं। कभी बलबला उठते हैं तो

कभी झुके हुए नीम के पत्ते अपनी लम्बी गर्दन बढ़ा कर मुँह से खींच लेते हैं।

सैकड़ों श्रमिक एक सुदृढ़ गढ़ की सुदृढ़ प्राचीर बनाने में संलग्न हैं। बड़े-बड़े पत्थर दीवार में ठोके जा रहे हैं। औरतें कंकड़ और चूना ढो रही हैं। राजराणा ज़ालिमसिंह चारों ओर घूमकर गढ़ का निरीक्षण कर रहे हैं। साथ में फौज के बख्शी और अनेक अनुचर हैं। इधर-उधर ग़ौर से देखते हुए ज़ालिमसिंह ने कहा—"काम ठीक चल रहा है दलेल खाँ। ईश्वर ने चाहा तो धनवाड़े की छावनी* ही हमारा मुस्तकिल मुक़ाम बन जायेगी।"

"बजा है हुज़ूर" दलेल खाँ ने कहा—"यह जगह निहायत खूबसूरत और क़ाबिले रिहाइश है। दोनों तरफ अरावली के बीच बड़ी सरसब्ज़ घाटी है और ज़मीन भी यहाँ की बड़ी ज़रखेज़ है। नज़दीक में कालीसिंध होने से पानी की कोई दिक्क़त नहीं होगी।"

मेवाड़ से निराश लौटने के बाद ज़ालिमसिंह कोटा राज्य में ही लगभग आधी ज़मीन अपने लिये पृथक् कर के एक अलग राज्य बनाने के मन्सूबे बाँध रहे थे। यद्यपि मेवाड़ में उनका प्रभुत्व सदा के लिए नष्ट हो चुका था तथापि सारे कोटा राज्य की बागडोर अब भी उन के हाथ में थी। झाला को पूरी आशा थी कि वे अपना स्वतन्त्र राज्य कोटे की भूमि में ही स्थापित कर लेंगे।

बनती हुई चाहरदीवारी का मुआयना करते हुए उन्होंने गढ़ का सारा नक्शा दलेल खाँ को समझाया और बोले—"वक्त जरूरत गढ़ से बाहर निकलने या भीतर आने के लिए ज़मीन के अन्दर दो सुरंगें

---

*कालीसिंध नदी के पास धनवाड़ा अति प्राचीन गाँव है। इसके पास सम्राट् पुष्यमित्र सुंग की सेना का यवन सम्राट् मेनेण्डर की सेना से युद्ध हुआ था। "झाला की छावनी" पहले "धनवाड़े की छावनी" कहलाती थी। यही स्थान अब झालावाड़ कहलाता है।

होनी चाहियें। क़िले के तीन बड़े दरवाज़ होंगे। बड़े दरवाज़े यानी नक्क़ारखाने के दरवाज़ों का मुँह पूरब की तरफ रहेगा। इस के अलावा एक दरवाज़ा उत्तर और एक दक्खन में रहेगा। दक्खन पच्छिम की जानिब एक छोटा सा चोर दरवाज़ा भी रखना पड़ेगा। पीछे की तरफ यानी पच्छिम में किसी दरवाज़ की जरूरत नहीं है। उधर की दीवार काफी ऊंची और मजबूत होनी चाहियें क्योंकि उधर की ज़मीन नीची है और पानी का ढाल है। उधर ही कुछ फ़ासले पर जो टेकरी है वहाँ तोपख़ाने की इमारत बनवाई जाये क्योंकि उस तरफ से ही ख़तरा ज्यादा है। उस टेकरी पर हमेशा हमारा क़ब्ज़ा रहना चाहिये।"

"बेहतर है हुज़ूर। आप किसी बात की फिक्र न करें। जैसा आपने फरमाया है वैसा ही होगा। भीतर की इमारत का नक़्शा भी क़रीब-क़रीब तैयार है।"

"अच्छा, तो मैं महराब खाँ को लेकर गागरोन की तरफ जाता हूँ। तुम यहाँ का काम बराबर देखते रहना" ज़ालिम ने कहा।

"जो हुक्म हुज़ूर।"

गागरोन के किले की काफी मरम्मत की जा चुकी थी। चौबुर्ज़े के नाम से वहाँ एक छोटा सा गढ़ अलग बन रहा था जिसके नीचे कालीसिंध की धारा काफी दूर तक बहती हुई दिखाई पड़ती है। वहीं से आगे कालीसिंध एक बड़े पहाड़ को बीच में से काट कर आगे बढ़ी है।

गागरोन का किला झालावाड़ से चार मील दूर है। किले का चक्कर काटती हुई नदी बहती है और किले से नीचे बींदू दह में अथाह जल है। किले की दीवार पर खड़े हो कर देखने से वह जल अपनी गहराई के कारण काला नज़र आता है। दुर्ग की प्राचीर इतनी ऊँची है कि नीचे गुज़रने वाले वहाँ से छोटे-छोटे नज़र आते हैं। पत्थर नीचे फेंकने पर वह चट्टानों से टकराता हुआ नीचे पहुँच

कर चूर-चूर हो जाता है। इस दुर्ग पर किसी समय खींची चौहानों का कब्ज़ा था। पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में माँडू के सुल्तान महमूद खिलजी ने जब गागरोन पर आक्रमण किया था तब वहाँ राजा अचलदास राज्य करते थे। राजपूतों ने अपने युग की पद्मिनी, महारानी उमा दे की सम्मान रक्षा के लिए केसरिया बाना पहन कर साका किया और दुर्ग में सब रजपूतनियाँ जौहर की ज्वाल में भस्म हो गईं। महमूद खिलजी ने भी वास्तव में अपने पूर्वज अलाउद्दीन खिलजी की परम्परा में ही यह कुकृत्य किया था। किन्तु दुर्ग में उसे कुछ नहीं मिला।

अस्तु, इस गागरोन दुर्ग का राजराणा ज़ालिमसिंह के युग में भी बहुत महत्व था। इस का मुख्य कारण यह था कि उस समय जितने मराठों के राज्य थे उन सब की सेना जब कभी आगरा, जयपुर, दिल्ली की ओर जाती थी तो वह इसी ओर से जाती थी और ज़ालिम को सदैव यही भय रहता था कि कोटा राज्य में गुजरते समय मराठे लूट-मार न करने लगें। अतः इस क्षेत्र की रक्षा के लिये उन्हें इस ओर के किलों में काफी तादात में सिपाही, तोपें, गोला बारूद और सधे हुए गोलन्दाज़ रखने पड़ते थे ताकि प्रजा की रक्षा के साथ इन दुर्गों की भी रक्षा हो सके। इन स्थानों पर सैनिक टुकड़ियाँ होने के कारण मराठे गाँव वालों को नहीं सताते थे और चुपचाप निकल जाते थे। इस के अतिरिक्त ज़ालिमसिंह उन्हें यदा कदा रुपये भेंट करते रहते थे।

जिस प्रकार झालावाड़ से चार मील उत्तर पूर्व में गागरोन है उसी प्रकार चार मील दक्षिण में झालरापाटन नामक अति प्राचीन नगर है जहाँ चंद्रभागा नदी के किनारे चन्द्रावती के मन्दिर हैं। वहाँ अनेक प्राचीन जैन मन्दिर भी हैं। जैन धर्म के आरम्भ से ही राजस्थान जैनियों का गढ़ रहा है और महावीर स्वामी तथा उनसे पहले के अनेक तीर्थंकर भी राजस्थान में हुए हैं। इस झालरापाटन नगर से प्राचीन

काल में चीन देश को अफीम का निर्यात होता था और अफीम के व्यापार का यह सब से बड़ा केन्द्र था। इस नगर के पश्चिम में एक विशाल सरोवर है जो जसवाँ ओढ़नी ने बनवाया था और इसी सरोवर के किनारे जसवाँ का आलीशान महल भी है जो अब द्वारिकाधीश के मन्दिर के रूप में परिवर्तित हो गया है। इसी नगर में छठी शताब्दी का बना हुआ प्रसिद्ध सूर्य मन्दिर है जिसे अब सात सहेलियों का मन्दिर कहते हैं।

राजराणा जालिमसिंह ने इस नगर के विकास और रक्षा की ओर काफी ध्यान दिया। उन्होंने नगर के चारों ओर मजबूत दीवार खिंचवाई और यत्र तत्र सैनिक चौकियाँ स्थापित कीं। नगर का निर्माण जयपुर के नक्शे पर किया गया। बड़ी चौपड़, छोटी चौपड़ बनाई गईं। इसी नगर को भारतवर्ष की पहली नगर पालिका बनाने का गौरव प्राप्त है। कुछ तो व्यापारियों का नगर होने के कारण प्राचीन काल से ही वहाँ ऐसी परम्परा थी कि नगर का प्रबन्ध नागरिक स्वयं करते थे। एक नगर सेठ होता था जो इस प्रकार का मुख्य कार्य किया करता था। राजराणा जालिमसिंह ने उस प्रबन्ध में और सुधार करके वहाँ विधिवत् एक नगरपालिका स्थापित कर दी।

व्यापारियों के पास जब लक्ष्मी अधिक होती है तो उसका अपहरण करने के लिये लुटेरे भी आ पहुँचते हैं। जहाँ गुड़ होता है वहाँ चींटे जा चिपकते हैं। अतः पिंडारियों ने भी अपनी छावनी उधर ही डाल रक्खी थी। लूटमार करने में पिंडारी मराठों के भी कान काटते थे। बड़े २ सेठों के मुँह पर मिर्च का तोबरा चढ़ा देते थे और घोड़ों की तरह उन के हाथ पाँव जमीन पर टेक देते थे। यदि वे गड़ा हुआ धन नहीं बताते थे तो उन की पीठ पर तड़ातड़ डंडे बजाते थे।

किन्तु जालिमसिंह ने पिंडारियों को भी अपना दोस्त बना लिया। पिंडारियों के सरदार मीर खाँ को अपने परिवार सहित उन्होंने शेरगढ़ के क़िले में रहने की इजाज़त दे दी। इसी शेरगढ़ के दुर्ग में आठवीं

शताब्दी का एक शिलालेख है जिस पर शाक्य वंशोत्पन्न कवि जज्जक द्वारा रचित सामन्त देवदत्त की प्रशस्ति खुदी हुई है।

मीरखाँ बड़े हौसले वाला लुटेरा था। इधर उधर से लूटमार करके शेरगढ़ में रात काट जाता था। पिंडारियों का दूसरा सरदार करीम खां तो अपने साथियों सहित धनवाड़े की छावनी के पास ही रहता था और उसके रहने का स्थान पिंडारियों की छावनी कहलाता था। पिंडारियों ने वहाँ एक बड़ी ईदगाह भी बनवाई जहाँ वे नमाज़ पढ़ा करते थे। ईद के दिन झालावाड़ के मुसलमान अब तक उसी ईदगाह में नमाज़ पढ़ते हैं।

× × ×

गागरोन का दौरा करने के बाद राजराणा ज़ालिमसिंह अपनी छावनी होते हुए इकलेरे का दौरे के लिये रवाना हुए। रास्ते में असनावर क़स्बे का दौरा करते समय उन्हें पता चला कि उन की भूतपूर्व कृपापात्र दासी मयूरी बीमार पड़ी है, एक झोंपड़ी में अपने जीवन की अन्तिम साँसें तोड़ रही है और राजराणा के दर्शन करने के लिये विह्वल हो रही है।

ज़ालिम का हृदय पसीज उठा। इसी दासी ने उन का सारा जीवन मोड़ दिया था। रास्ते की एक ठोकर भी किसी समय कितनी खतरनाक होती है। कोटे से निर्वासित होने के पश्चात् उन्होंने फिर कभी मयूरी को नहीं देखा था। वे मेवाड़ गये, उस के तीन वर्ष बाद ही मयूरी को भी राजमहल छोड़ना पड़ा था। महाराव के उपदंश होने पर ईर्ष्यालु स्त्रियों ने मयूरी को चैन न लेने दिया। महाराव के बीमार होने पर और दासियों के कान भरने पर एक दिन महारानी ने क्रुद्ध होकर कहा—"जलमुँही मयूरी! पहले तूने मेरे भाई का सत्यानाश कराया और अब मेरे पति पर तेरी नज़र है। चुड़ैल कहीं की! निकल बाहर यहाँ से और आइन्दा कभी आई तो

इस गढ़ की दीवार से तेरी हड्डियाँ फिकवा दूँगी ।"

महाराव के शय्यागत होने के कारण मयूरी की सुनने वाला वहाँ कौन था। बेचारी एक बैलगाड़ी में चढ़कर अपने गाँव चली गई। राजमहलों का वैभव राजमहलों में ही रह गया। एक पतिता और चाण्डालिनी की भाँति वह रनिवास के द्वार से बाहर कर दी गई। उतरती जवानी से शरीर पहले ही गल रहा था और अपमान की अन्तर्दाह ने तो उस की कमर ही तोड़ दी। महलों की विलासिनी नारी से शारीरिक श्रम अधिक न हो सका। अपने गाँव में आकर अपना पुरानी झोंपड़ी में रहने लगी। ठोकरें खाती हुई वह खेत पर जाती, घर पर गगरी भर कर लाती, सूखी रोटियाँ खाती और रात को रोती थी। अनेक रोगों ने उसे घेर लिया। धूप में चलती तो चक्कर आने लगते। बोझा उठाती तो दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगता, साँस तेज़ चलने लगती। कमर में दर्द होता था। हथेलियों और पैरों के तलुए गर्मी से जलते थे। गोश्त, अंडे और महलों के पकवान अपना रंग दिखा रहे थे। उसे संग्रहणी रोग भी हो गया। कुछ दिन बाद मयूरी ने चारपाई पकड़ ली।

राजराणा ने झोंपड़ी में प्रवेश किया तो मयूरी के चेहरे पर प्रसन्नता की एक लहर सी दौड़ गई। "धन्य भाग।" हर्ष और कृतज्ञता से आँखों में आँसू छलछला आये। उसके अधर हिले और उसने बोलने की चेष्टा की। चिराग़ आख़िरी बार जल रहा था।

"मयूरी ! क्या हो गया तुझे ? मुझे विश्वास नहीं होता कि तू वही है।"

मयूरी किसी समय चाँदनी की तरह गोरी थी। उसके गुलाब से उभरे हुए कपोलों पर अब लम्बी झुर्रियाँ पड़ गई थीं मानो फूल मुरझा गया था। अपने निकलते हुए प्राणों को क्षण भर के लिये रोक कर बोली—"आप के दर्शन के लिये ही जी रही थी, राजराणा जी। बस,

अब ज़िन्दगी थक गई, मेरे मालिक। मुझे खुशी है कि मरने से पहले आप को देख लिया" कहते-कहते उसकी आँखें पथरा गईं, गर्दन लटक गई और शरीर जड़ हो गया। ज़ालिम की आँखों से आँसू की दो बूँदें टपक पड़ीं और अतीत का सारा चित्र उनके आगे घूम गया जब मयूरी अपनी मस्त चाल से पायल बजाती हुई मदमाती, थिरकती, मुस्कराती चलती थी मानों पृथ्वी और स्वर्ग दोनों उस के पाँवों में बँधे हुए थे। उस बेजान, पार्थिव अस्थिपंजर पर उन्होंने क़फन डाला और घोड़े पर चढ़ कर चले गये।

आठवाँ परिच्छेद

कोटा राज्य के सीमावर्ती क़स्बे शाहाबाद में पौराणिक काल से कुछ ब्राह्मण परिवार रहते चले आ रहे थे जिन के पास काफी पैतृक सम्पत्ति थी। शाहाबाद के क़िले और सारे क़स्बे पर ब्राह्मणों का अधिकार था। महाभारत में हमें चर्मनावती का जिक्र मिलता है जो आज की चम्बल नदी है। किसी समय हज़ारों गोचर्म इस नदी में धोय जाते थे। एक प्रतापी राजा नित्य प्रति हज़ारों लोगों को भोजन कराता था और काफी दान दक्षिणा देता था। पशुओं के रक्त की धारा नदी में आकर मिलती थी तो कुछ देर तक नदी का रंग लाल हो जाता था। उत्तर रामचरित में भवभूति ने वशिष्ठ के लिये "कपिला कल्याणी मडमडायिता" लिखा है जिसे स्वतः सिद्ध होता है कि आठवीं शताब्दी तक ब्राह्मणों को गो मांस खाते हुए नाटक में अंकित करना किसी प्रकार के आक्षप का विषय न था। इन्डोनेशिया के हिन्दू चिरकाल से बराबर गो माँस खाते चले आ रहे हैं और भारतवर्ष का जब कोई हिन्दू उनसे कहता है कि तुम बड़े म्लेच्छ हो

तो वे कहते हैं कि आर्य लोग तो हजारों वर्षों से गो मांस खाते रहे हैं। न जाने तुम हिन्दुस्तानी बीच में कब बदल गये। युरोप में समस्त आर्य जाति गाय खाती है।

तथापि आज के भारत में गोमांस की चर्चा करना भी घोर असभ्यता है और हमारे घरों में कदाचित् कभी ज़िक्र आ जाये तो लोग 'राम, राम' कर उठते हैं। किन्तु इतिहास किसी को नहीं छोड़ता। और तो और उस युग में नर मांस भी लोग चट्ट कर जाते थे जो आज के युग में केवल अघोरियों तक ही सीमित रह गया है, यद्यपि कभी-कभी किसी गन्दे होटल के नृशंस बावर्ची छोटे-छोटे भोले बच्चों की बलि चढ़ा कर गोश्त खिलाते पकड़े गये हैं।

जो भी हो, शाहाबाद के ब्राह्मणों की अपार धनराशि और अतुल ऐश्वर्य से पड़ौसी शासकों के मुँह में पानी भर आता था। उनके राज्य को हस्तगत करके अपना राज्य बढ़ाने का आकर्षण तो था ही। अतः जालिमसिंह ने मौक़ा देख कर अपनी सेना सहित शाहाबाद के किले पर हमला कर दिया। ब्राह्मण की हत्या करना प्रत्येक हिन्दू के लिये पाप है किन्तु जालिमसिंह पाप और पुण्य का निर्णय अपनी तलवार से किया करते थे।

दुर्ग घेर लिया गया। बहुत दिन तक तोपें चलती रहीं किन्तु ब्राह्मण क़ाबू में नहीं आये। किला जीतने की कोई तरकीब नहीं सूझती थी। फौज के बख्शी ने भी काफी दिमाग़ लगाया लेकिन कोई उपाय नहीं सूझा। दो चार दिन और तोपें चलवा कर ज़ालिम ने संधि का प्रस्ताव पेश कर दिया। उन्होंने ब्राह्मणों से कहलाया कि आप तो हम क्षत्रियों के सदा से पूज्य गुरु रहे हैं। आप भूसुर हैं—पृथ्वी पर साक्षात् देवता तुल्य हैं। आप से युद्ध कर के हम ने जो धृष्टता की है उसके कारण हम बहुत लज्जित हैं। हम आप से अपने अपराध की क्षमा चाहते हैं और संधि करना चाहते हैं। जिस प्रकार हमारे बड़े बूढ़ों ने दान

दक्षिणा द्वारा आप को सन्तुष्ट करके सदैव आप का आशीर्वाद प्राप्त किया है उसी प्रकार हम भी आप के चरण छूने के इच्छुक हैं। आप कृपा करके हमारी प्रार्थना मान लीजिये। कल प्रात : काल स्नान-संध्या के उपरान्त भोजन करने के लिये पधारिये और हमारी अतिथि सेवा स्वीकार करिये । भोजन के पश्चात् हम दक्षिणा देकर और आप का आशीर्वाद लेकर कोटे वापस चले जायेंगे ।

भोजन भट्टों ने तुरन्त भोजन का न्यौता स्वीकार कर लिया । लड्डू, पेड़ो से क्षुधा तृप्ति की लालसा प्रबल हो गई और मुँह में पानी भर आया । प्रातः काल स्नान संध्योपरान्त तिलक छापे लगाये हुए भोजन के निमित्त पेटू बाहर पधार आये । कुछ लोग रास्ते में भाँग की पुड़कियाँ खोल-खोल कर चट कर रहे थे । कुछ अपनी लम्बी चोटी के गाँठ दे रहे थे और कुछ रात से ही निराहार रहने के कारण अपने पेट पर हाथ फेर कर देख रहे थे कि पूरी तरह खाली है या नहीं ।

डेरों के बाहर मैदान में सवेरे चार बजे से ही पकवान पक रहे थे । खीर पुड़ी के अलावा लड्डू, पेड़े, बरफी, बालूशाई और जलेबी की सुगन्ध से वातावरण सुरभिपूर्ण था जिस के कारण ब्राह्मणों की जठरानल अधिक तीव्र हो रही थी और वे उस समस्त सामग्री को अपने शरीर रूपी यज्ञ के उदर रूपी कुण्ड में होम करने के लिये आतुर हो रहे थे ।

सिपाहियों ने ब्राह्मणों के पाँव धोये । राजराणा जालिमसिंह यजमान बने हुए साक्षात् धर्मराज की भाँति आचरण कर रहे थे । गले में तुलसी की माला डाल रक्खी थी और माथे पर लम्बा तिलक खींच रक्खा था । कंधे पर सफेद अंगोछा और पाँवों में लम्बी धोती थी, मानो अपने पूर्वजों का श्राद्ध करने के लिये तैयार खड़े हो ।

"पधारो महाराज" जालिम ने हाथ जोड़ कर कहा—"आज हमारे धन्य भाग जो आप ने यह स्थान पवित्र किया ।"

"आयुष्मान् राजन्" ब्राह्मणों ने अकड़ कर अपना वरद हस्त उठाया। पंडितों के प्रधान आचार्य जी अपनी प्रसन्न मुद्रा में संस्कृत के एक दो श्लोक भी बोल गये। "स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः, परोपकाराय सतां विभूतयः" का उपदेश ज़ालिमसिंह को सुना कर वे खीर पीने के लिये आसन लगा कर जम गये। ब्राह्मणो मधुरः प्रियः। उनके चेले चीटे भी अपने-अपने आसनों पर विराजमान हुए। लम्बी-लम्बी चोटियाँ खुल गईं और वे छोटी-छोटी नागिन सी उन की मोटी-मोटी खोपड़ियों पर हिलने लगीं।

पत्तल दोने परसे गये। खीर, पुड़ी, मिठाइयाँ, लड्डू सब धरे गये। इमली का झोल और रायते के कुल्हड़ आगे रखे गये। श्री गणेशाय नमः हुआ। पाँडे जी लड्डू सटकाने लगे। पेड़े एक के बाद एक पेट में जाने लगे। "शु.डुप शु.डुप" कर के खीर पीने लगे। बालूशाई और बरफी से पेट में चुनाई करने लगे। बीच-बीच में रायता और इमली का झोल पी जाते थे। स्वाद बदलने के लिये सेब खाते थे। कुछ लोग खाते-खाते ज़ोर से डकार के साथ ओम्कार भी करते थे। कुछ केवल आसन बदल कर फिर लड्डू ठूँसने लग जाते थे और परिमाण का अनुमान लगाने के लिये तोंद पर हाथ फेर लेते थे।

ज़ालिम ने देखा कि पंडित अपना भोजन पाने में दत्तचित्त हैं। उन्होंने तुरन्त संकेत किया कि लगा दो तोपें इन की पीठ पर। गोलन्दाज़ तैयार खड़े थे। क्षण भर में महताबें जलीं और "धड़ाम-धड़ाम" तोपें गरजीं। बहुत से तो पहले बार में ही उड़ गये। जो बचे उन्होंने "हरे प्रभू, रक्षा करो", "त्राहि त्राहि राजन्" कह कर अपने भारी पेट ज़ालिम की ओर लम्बे कर दिये। साष्टांग दण्डवत् कर गये। किसी की पत्तल पर लड्डू बिखर गये, किसी के रायते का कुल्हड़ फूट गया तो किसी की धोती ढीली हो गई। औंधे पड़े हुए हाथ बाँधे हुए वे ज़ालिमसिंह से प्राण-भिक्षा माँगने लगे।

दूर खड़े हुए राजराणा ने ब्राह्मणों पर दया करके तोप बन्द करवाई। ब्राह्मणों ने अपनी धोतियाँ सँभाली और अपने आप को सशस्त्र सैनिकों को सौंप दिया। सब पकड़ लिये गये। पगड़ियों और अंगोछों से उनकी मुश्कें कस ली गईं और बजाय उन को कोई दक्षिणा देने के उन की सारी सम्पत्ति, चाँदी सोने के भोजन पात्र, शाहाबाद का दुर्ग और उस का सारा खज़ाना ज़ालिमसिंह को प्राप्त हो गया। करोड़ों रुपए मिल गए। ब्राह्मणों के कोष में एक बीजक भी ज़ालिम को प्राप्त हुआ जिस के अनुसार शाहाबाद के किले में एक स्थान पर ज़मीन में साठ हाथ नीचे चौंसठ करोड़ रुपया गड़ा हुआ है।*

*इस बीजक की प्रति अब तक उपलब्ध है। ज़ालिमसिंह ने इसे अपने पास गुप्त रखा था। वे चाहते थे कि जब उनका पृथक् राज्य स्थापित हो तब इसका प्रयोग किया जाए। किन्तु यह धन अब तक भूगर्भ में ही निहित है।

नवाँ परिच्छेद

राजराणा ज़ालिमसिंह अपनी हवेली में बैठे हुक्का पी रहे थे। उन का दस वर्षीय पुत्र माधोसिंह पास पास ही खेल रहा था। उस की कमर में बँधी हुई छुरी निकाल कर राजराणा बोले—"बेटा, यह छुरी बहुत छोटी है। अब तुम बड़े हो गए हो। अब तलवार बाँधा करो।" यह कह कर वे पास के कमरे में गए और एक छोटी सी सी तलवार लाकर कुमार को दी। सुनहरी मूठ और लाल मखमल की मियान देख कर बालक खुशी से नाच उठा। तलवार पकड़ कर इधर-उधर हवा में घुमाने लगा। पिता ने दीवार की ओर इशारा करके कहा—"अच्छा बताओ, शेर मारने की तलवार कौन सी है?"

एक पतली सी लम्बी तलवार की ओर संकेत कर के उस ने कहा—"ये"

"शाब्बास! इसी तलवार से तो तुम्हारे दादा ने शेर मारा था। अच्छा अब बताओ भैंसा मारने की तलवार कौन सी है?"

बालक ने एक चौड़े दल की तलवार दिखा कर कहा—"ये"

"शाब्बास। तुम बड़े समझदार हो। अच्छा अब जाओ, खेलो।"

पुत्र ने जा कर अपना नया शस्त्र माँ को दिखाया और फूला न समाया। बड़ी देर तक उसे ले कर इधर-उधर कूदता रहा, पैंतरे बदलता रहा, हवा में तलवार घुमाता रहा किन्तु माँ के चेहरे पर ज़रा भी खुशी नहीं थी। आज उस का मुँह फूल कर ऐसा कुप्पा हो रहा था जैसे तोबरा चढ़ा रक्खा हो। बालक खेलता-खेलता फिर बाहर चला गया।

कुछ देर बाद ज़ालिमसिंह भोजन करने के लिए जनानखाने में गए। सीसोदिनी ने देख कर घृणा मुँह फेर लिया और रोष से भौंहें चढ़ा लीं जैसे सिंहनी के कोई कंकर लग गया हो। जालिमसिंह पहली ही नज़र में ताड़ गये कि आज जरूर कुछ दाल में काला है। वे भी गम्भीर होकर आसन पर बैठ गये।

थाल परसा गया। थाल का आवरण वस्त्र उठा कर नौकरानी चली गई। वे भोजन करने लगे। सीसोदिनी ने मुँह झुका रक्खा था। लगभग आधा चेहरा आँचल से ढका हुआ था और आधा चेहरा कुछ सुर्खी लिए हुए दिखाई पड़ता था। क्रोध और क्षोभ दोनों उसके चेहरे से व्यक्त होते थे।

"आज नाराज क्यों हो सक्तावत जी? क्या बात है?" ज़ालिम ने निवाला तोड़ते हुए कहा।

"नाराज़ कहाँ हूँ। मैं तो बहुत खुश हूँ। मैं कौन होती हूँ नाराज़ होने वाली। मेरी क्या मजाल है। जाइए तोपें चलवाइए, बन्दूकें चलवाइये। आप को पता नहीं आप के लड़का हुआ है। मैं तो बहुत खुश हूँ" ईर्ष्या के कारण नारी की आँखों से आँसू निकल पड़े। ज़ालिम का चेहरा लटक गया। निवाला हाथ में ही रह गया। उन के पुत्र जन्म की सूचना उन की पत्नी ने ही जनानखाने से बाहर नहीं जाने दी थी। कुछ क्षण रुक कर रजपूतनी

ने फिर कहा—"मैंने कितनी बार समझाया था कि मत रक्खो उस मुसलमानी को घर में। लेकिन मेरी सुनता कौन है। राजपूत के घर में और एक मुसलमान औरत! कितनी शरम की बात है। प्रताप और बाप्पा के नाम को लजा दिया आपने" सीसोदिनी सिसक सिसक कर रोने लगी।

ज़ालिम को भी ताव आ गया। चेहरा सुर्ख हो गया—"तो क्या गजब हो गया। मुसलमान क्या इन्सान नहीं होते? जिस बाप्पा के नाम की तुम दुहाई देती हो उसी बाप्पा के घर में एक सौ तीस मुसलमानियाँ थीं। मुसलमानी के क्या दिल नहीं होता? क्या हिन्दुआनी के ही दिल होता है? मुसलमानों ने बीसियों बार मेरा जान बचाई है। तोपखाने में अगर मुसलमान न होते तो मैं कभी का मर गया होता। याद रक्खो, मन्नी को इस घर में हमेशा इज्जत से रोटी मिलती रहेगी। अब वह एक इज्जतदार औरत है जो तुम्हारी तरह पर्दे में रहती है। आइन्दा अगर इस तरह की बात कभी ज़बान पर लाईं तो मुझ से बुरा और कोई नहीं होगा। याद रक्खो, मेरा नाम ज़ालिमसिंह है। ज़ालिमसिंह किसी को नहीं बख्शता।"

औरत को धुड़क कर ज़ालिम गुस्से से पिनपिनाते हुए बाहर आ गये और नौकरों को हुक्म दिया कि बन्दूकें चलाई जायें। पुत्र-जन्म की खुशी मनाई जाए। दनादन-दनादन काफी देर तक बन्दूकें चलती रहीं। खुशामदी लोगों ने आ आकर राजराणा को बधाई दी। मुसलमान अधिक आए और हिन्दू कम। मन्नी बाई सारोला तहसील में अरण्डखेड़ा गाँव की एक खूबसूरत मुसलमानी थी जिसे राजराणा ने रखैल के रूप में अपने घर में रख लिया था।* उस के पुत्र का नाम गोवर्धनदास रखा।

× × ×

* मन्नी बाई ने अपनी जन्मभूमि में एक सुन्दर जल-कुण्ड बनवाया था जिस के शिलालेख पर अब तक उस का नाम खुदा हुआ है।

रजाराणा ज़ालिमसिंह को काफी समय तक कुश्ती देखने का बड़ा शौक़ रहा। बहुत से पहलवान राज्य की ओर से पलते थे। वे लोग खूब दूध पीते, पिस्ते बदाम खाते, दिन भर डंड पेलते और अखाड़े में ज़ोर करते थे। मंगल के दिन घंटों तक दंगल होता रहता था। पहलवान ताल ठोक कर कूदते, "या अली" और "बजरंगबली" चिल्लाते, चट्टानों की तरह एक दूसरे से टकराते, उठा-उठा कर पटकते, मसलते, घिसते और चित्त करते रहते थे। धौंकनी की तरह उनकी छाती साँय-साँय करने लगती और कभी-कभी दाव न लगने पर वे पड़े-पड़े बड़ी देर तक कसकते हाँपते रहते थे। हाथ का पसीना सुखाने के लिए मिट्टी मुट्ठियों में भरते रहते थे और कभी प्रतिद्वन्दी पर भी मुट्ठी भर मिट्टी पटक देते थे। जब प्रतिद्वन्दी चित्त हो जाता तो विजेता मल्ल ताल ठोक कर ज़ालिम के आगे सलाम करता था।

एक दिन ऐसा ही दंगल चल रहा था। अखाड़े के तीन ओर कई पहलवान लँगोट बाँधे खड़े थे। अखाड़े के चारों सिरों पर अगरबत्तियाँ महक रही थीं। अखाड़े में दो चार फूल मालायें बिखेर दी गई थीं। चौथी ओर कुछ दर्शक फ़र्श पर बैठे थे और एक उच्च आसन पर राजराणा विराजमान थे। कई कुश्तियाँ हो चुकी थीं। कई पहलवान चित्त कर दिये गये थे। एक दो सीना सवार कुश्तियाँ भी हुईं और एक दो में सिर्फ पीठ पर दोनों कंधों की तरफ मिट्टी लग जाने में ही नीचे पड़े हुए पहलवान पूरे चित्त न होने पर भी चित्त समझ लिये गये। कुछ बराबर पर भी छुड़ाये गये।

कुछ देर में उन पहलवानों की बारी आई जो हाथ में बघनख पहन कर लड़ते थे। दो पहलवान अखाड़े में उतरे। पैंतरे बदलने लगे। बघनख मारने लगे। रोक-थाम के बाद जिस किसी के बघनख घुस जाता तो वह दर्द से चीं बोल उठता, माँस निकल आता, खून टपकने लगता। खूनखच्चर होकर दोनों ज़मीन पर बेहोश गिर पड़े।

उन्हें उठा कर अलग किया गया। फिर दूसरा जोड़ी आई। फिर वही बघनख घुसेड़—फिर वही खून खराबी। ज़ालिम को इस प्रकार की क्रूरता और रक्तपात देखकर बड़ा मज़ा आता था, और जब कभी पहलवान दर्द से चीं-चीं करते तो वे बड़े खुश होते थे। दर्द का मज़ा लेने के उदाहरण इतिहास में भरे पड़े हैं। हूण और मंगोल केवल बलात्कार ही नहीं अन्य अनेक बर्बर और नृशंस कृत्यों द्वारा स्त्री पुरुषों पर अत्याचार किया करते थे। बकरों की तरह औंधा लटका कर उनकी खाल उधेड़ते थे और बाद में उन पर नमक मिर्च छिड़कते थे जिसकी जलन से जब स्त्री पुरुष छिपकली की कटी हुई पूँछ की तरह छटपटाते तो वे नर राक्षस खुशी के मारे हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते थे।

पहलवान लोहूलुहान होने से पहल अपना पिंड नहीं छुड़ा पाते थे। उन्हें काफी इनाम मिलता था। खाना-पीना वेतन सब राज्य की ओर से था। बच्चों की कोई फिक्र थी नहीं। रुपये का लालच, ज़ालिम का हुक्म और जीत का यश पाने की लालसा, इन्हीं कारणों से उन्हें यह क्रूर कृत्य करना पड़ता था।

जब यह खेल चल रहा था तब ज़ालिम से मिलने के लिये भूतपूर्व बूंदी नरेश रावराजा उम्मेदसिंह उधर आ निकले। अपने पौत्र को सिंहासन सौंप कर राजर्षि इधर-उधर घूमते फिरते थे। सन्यास अवस्था में भी राजर्षि शस्त्र बाँधे रहते थे। ढाल, तलवार, कटार, भाला, बंदूक़ सब साथ रखते थे। पहलवानों का रक्तपात देख कर उन्हें बहुत क्षोभ हुआ और उन्होंने ज़ालिम की भर्त्सना करते हुए कहा—"इन ग़रीबों को क्यों मरवाते हो भाला! बन्द करो इस बर्बरता को। जिन पहलवानों को तुम बड़े बहादुर और बड़े ताक़तवर समझते हो वे निरे बूदम हैं। ये भला तुम्हारे क्या काम आयेंगे। मैं बुड्ढा हो गया पर ये मेरा हाथ तक तो छुड़ा नहीं सकते। इनकी ताक़त का नमूना मैं

तुम्हें अभी बताता हूँ।"

यह कहकर उन्होंने पीठ से अपनी ढाल उतारी और उसे खुली हुई टोपी की तरह ज़मीन पर रख दी। एक एक करके अपने शस्त्र ढाल के ऊपर रख दिये और आवाज़ लगा कर बोले—"है कोई ऐसा वीर जो अपनी चिमटी से इस ढाल को उठा दे।"

ज़ालिमसिंह ने पहलवानों को ललकारा। एक-एक करके पहलवानों ने ढाल के पास जाकर अपनी ताक़त अज़माई। बहुत ज़ोर लगाया, बहुत हुंकार की, पचते-पचते पसीना आ गया लेकिन शस्त्रों से भरी ढाल किसी से न उठी। ज़ालिम का मुँह सुट्ट रह गया। सिर पर जैसे किसी ने घड़ा औंधा दिया था। पहलवानों की हालत देख कर उन्होंने स्वयं तो ढाल के हाथ लगाने की भी चेष्टा नहीं की। वृद्ध रावराजा ने कहा—"देख लिया इन का दम?" इस के बाद वे उठे और बिना किसी परिश्रम के ढाल को चिमटी से उठा लिया और कुछ देर तक उसे लिए हुए इस प्रकार खड़े रहे जैसे ढाल को सांचे में पकड़ रखा हो। राजराणा "धन्य, धन्य" कह उठे और राजर्षि को गले लगा लिया। वह नृशंस अत्याचार उन्होंने उसी दिन से बन्द करने का वादा किया और अपनी भूल पर काफी खेद प्रकट किया। राजर्षि के जाने के बाद राजराणा ने पहलवानों को खूब झिड़का—"तुम सब निरे पोंगे हो। किस बात के इतने हल्वे खाते हो? किस बात को इतने बदाम खाते हो। तुम एक ढाल को नहीं उठा सके तो ढाल पकड़ने वाले का क्या बिगाड़ सकते हो? तुम बड़े नालायक हो।" उस दिन से पहलवानों की ख़ुराक बहुत कम कर दी गई और उनके बघनख भी छीन लिए गए।

राजर्षि चले गए किन्तु ज़ालिम के दिल में बहुत बड़ी ईर्ष्या छोड़ गए। रावराजा उम्मेदसिंह का आदर सारे राजस्थान में था और बूंदी की प्रजा तो राजर्षि को देवता तुल्य मानती थी। ज़ालिम को

तीव्र आशंका हुई कि उस क्षेत्र में उम्मेदसिंह का रोब दोब कहीं इतना न बढ़ जाए कि ज़ालिम को कोई कुछ समझे ही नहीं। उम्मेदसिंह का नाम ले ले कर उन के सजातीय यानी हाड़ा राजपूत बड़ी हेकड़ी मारा करते थे जो ज़ालिम के हृदय में शूल की तरह चुभ जाती थी। न रहे बाँस न बजे बाँसुरी। एक बन्दूकधारी सैनिक को उम्मेदसिंह पर घात करने के लिए बूंदी भेजा गया।

उम्मेद के चेहरे से ऐसा तेज टपकता था कि साधारण व्यक्ति तो उन के पास पहुँच कर ही काँप उठता था और बोलने का साहस नहीं करता था। युवावस्था में वे थे भी ऐसे ही उग्रतेजा कि जिस से बिगड़ गई उस के लिए यमलोक का द्वार खुला ही रहता था। बूँदी नगर से कुछ फासले पर वे शिकारबुर्ज नामक एक छोटी सी गढ़ी में रहते थे और ईश्वर-भक्ति में समय बिताते थे। आज भी वे संध्योपासना से निवृत्त हो कर बाहर चबूतरे पर हथेलियाँ टेके हुए निर्भीक और निःशंक बैठे जैसे जंगल में शेर बैठा हो। केश बिखरे हुए थे। भगवा वस्त्र और गले में माला।

बरसात का मौसम था। मेघ घिर आने के कारण घुमस हो रही थी। राजर्षि के समीप उनकी सन्यासिनी महारानी बैठी थी। सूर्यास्त हो चुका था। बादलों के कारण अंधकार कुछ जल्दी छा गया था। पेड़ों पर पक्षी सो गए थे। वातावरण शान्त था। सहसा उन की पत्नी को एक पेड़ की झुरमुट में हल्का सा प्रकाश नज़र आया और वे चौंक पड़ीं। दूसरी बार गौर से देखा तो सन्देह और बढ़ गया। उस ज़माने में तोड़ेदार बन्दूकें होती थीं। कारतूस तो थे नहीं। बारूद भर कर गोली चलाई जाती थी और बारूद में आग लगाने के लिये बन्दूक के घोड़े पर टोपी नहीं होती थी बल्कि बन्दूकची को एक पतला सा लम्बा कपड़ा अपने पास रखना पड़ता था, जो सूत की डोरी की तरह कुछ गुथा हुआ सा होता था और जिस में

चकमक पत्थर की सहायता से आग लगाई जाती थी। इस कपड़े को कली कहते थे। लबलबी हिलाने पर घोड़े के साथ वह कली बारूद से जा मिलती थी और इस प्रकार गोली चल जाती थी।

रानी ने संकेत किया। उस ओर ध्यान दिये बिना ही राजर्षि ने अन्हड़पन से कहा—"कोई जुगनू होगा।"

"मैं कहती हूँ जुगनू नहीं है। जुगनू इस तरह नहीं चमकता।"

पहली नजर में ही उम्मेद सिंह ताड़ गये कि कली जल रही है। बैठे-बैठे ही उन्होंने सिंह की तरह गरज कर कहा—"अरे अगर कोई उम्मेदसिंह को मारने आया हो तो ज़रा संभल कर गोली चलाना। उम्मेदसिंह यहाँ बैठा है।"

भय से काँपता हुआ वह घाती धड़ाम से नीचे गिर पड़ा और उस की टाँग टूट गई। कुछ तो उसकी धर्म भीरुता थी कि निरपराध सन्यासी पर कैसे गोली चलाये, कुछ यह भय कि पकड़े जाने पर लोग उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे, कुछ यह आशंका कि यदि निशाना चूक गया तो दुबारा बन्दूक भरने का समय कौन देगा। और फिर समूचे वातावरण को हिला देने वाली उम्मेद की गर्जना से वह पेड़ पर अपना संतुलन खो बैठा। धरती पर पड़ते ही बेहोश हो गया।

उम्मेदसिंह ने उसे दौड़ कर गोद में उठाया। पट्टियाँ बाँधी। रानी ने उसके माथे पर कुछ पानी छिड़का और वह होश में आ गया। जब तक वह बिल्कुल ठीक नहीं हो गया, उसका इलाज बराबर जारी रहा। उस पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया। जब उसने विदा माँगी तो राजर्षि अनायास पूछ बैठे—"कहाँ से आये थे?"

"मेरे मालिक ने मुझ से वायदा करा लिया है कि मैं उनका नाम न बताऊँ।"

"अच्छा न सही। जिस किसी ने तुम्हें भेजा हो उससे हमारा

"जय रघुनाथ" कहना। अगर हमें यह पता होता कि तुम नीचे गिर पड़ोगे तो हम कुछ बोलते ही नहीं।" उसे कुछ पुरस्कार दे कर विदा किया।

अपनी भूल पर आँसू बहाता हुआ घाती चरण छू कर चला गया। सब लोग उम्मेदसिंह की उदारता से आश्चर्यचकित रह गये वर्ना वे ही उम्मेदसिंह थे जिन्होंने अपने शत्रुओं को जड़मूल से नष्ट कर दिया था। उस तुच्छ व्यक्ति की क्या मजाल थी जो नाम न बताता। उसकी ज़बान खींच लेते। एक बार उन्हें धोखा देने पर एक जागीरदार को उन्होंने उसके घर पर जा कर मारा था। अपने पिता रावराजा बुद्धसिंह द्वारा खोये हुए बूँदी राज्य को उन्होंने राणा प्रताप की भाँति अपनी वीरता और पुरुषार्थ के बल से वापस जीत लिया था और फिर कुछ वर्षों तक उस पर राज्य कर के उन्होंने अपने पौत्र को सिंहासन सौंप कर जीता हुआ सारा राज्य त्याग दिया।

दसवाँ परिच्छेद

"कर्नल मानसून ! अगर आप हमारी राय नहीं मानोगे तो आप की फौज ऐसी पिटेगी कि सारी उम्र याद रक्खोगे।"

"तुम हिन्दुस्तानी हम को क्या लड़ाई लड़ना सिखा सकता है। हम वो नेशन है जो नेपोलियन से लड़ सकता है" मानसून ने सीना तान कर कहा।

"लेकिन साहब ! यहाँ नेपोलियन से नहीं, मराठों से मुक़ाबला है जो पहाड़ के ऊपर से आप पर चूहे की तरह कूद सकते हैं। यशवन्तराव होल्कर ऐसे बिगड़े दिमाग़ का आदमी है कि अगर तलवार खींच कर वह आप के पीछे पड़ गया तो एक-एक का सिर काट लेगा" ज़ालिम ने उत्तर दिया।

"हम उसको देखना माँगता है। होल्कर को ज़िन्दा गिरफ्तार करना माँगता है" कर्नल बोला।

"अच्छा, तो फिर जाइये साहब बहादुर। आप की जो मर्ज़ी हो कीजिये। फौज ले जाइये और उसे ज़िन्दा गिरफ्तार कर लाइये"

राजराणा ने विदा करते हुए कहा—"ईश्वर आप को सही सलामत वापस लाये।"

कर्नल मानसून की रेजीमेन्ट पचपहाड़ से बढ़ कर आवर पहुँची। चम्बल में बाढ आ रही थी। रात का समय था। पुल पर पानी उतर रहा था। बाढ़ उतरने की प्रतीक्षा में मानसून रुक गया। कर्नल को पता न था जिस प्रतिद्वन्दी पर चढ़ाई करने के लिये वह अकड़ता हुआ जा रहा था वह रातों रात नदी पार करके आ पहुँचा है।

पौ फटते-फटते "जै महाकाली" का सिंहनाद सुनाई पड़ा। "होल्कर आ गया, होल्कर आ गया।" साहब बौखला उठा। सारी सेना में खलबली मच गई। लोग संभलें-संभलें इतने तो तोपें गरजने लगी। होल्कर भूखे गरुड़ की तरह झपटता हुआ आ रहा था। मानसून घिर गया। ज़ोरों से तलवार चल रही थी। खोपड़ियाँ लुढ़क रही थीं। भालों से देह फूट रही थीं।

बात की बात में अँग्रेज़ों की आधी से अधिक सेना कट गई। कर्नल मानसून ने घोड़े के ज़ोर से ऐड़ लगाई और भागा। उसकी फौज चली उसके पीछे।

'कहाँ भागता है हिजड़े" होल्कर चिल्लाया—"इतना सस्ता थोड़े ही छोड़ दूँगा। अगर एक-एक को न काट दूँ तो अपने बाप की औलाद नहीं।"

आगे-आगे मानसून और पीछे-पीछे होल्कर। ज़ालिम ने मानसून के पिटने का हाल सुना तो गुस्से से आगबबूला हो गये—"उल्लू का पट्ठा, लाल मुँह का बन्दर। साले को कितना समझाया था कि मत जा इस तरह अपने बाप के आगे। खुद भी मरा और हमें भी मरवाया। महराब खाँ, मुकन्दरे की फौजी टुकड़ी को फौरन हुक्म दो कि होल्कर को वहीं रोकें, घाटी के अन्दर वर्ना यह क़यामत सीधी कोटे पर आयेगी। पलायते के ठाकुर अमरसिंह जी से कहो कि चार सौ

घुड़सवारों को साथ लेकर फौरन कूच बोल दें मुकन्दरे के लिये और जब तक जान में जान रहे दुश्मन की फौज क़तई आगे न बढ़ने दें।"

"जो हुक्म ! अभी जाता हूँ।"

झाला ने इस मौक़े पर अपने दुश्मनों को मरवाया। ख़ैर, चुने हुए बहादुरों को लेकर ठाकुर साहब जा डटे मोर्चे पर। तलवार से तलवार फिर मिली और ढालें फिर बजने लगीं। बहादुर हाड़ा ने अपने जान की बाज़ी लगा दी। शरीर पर लड़ते-लड़ते बावन घाव लगे। गिरते-गिरते भी दो-चार को यमलोक पहुँचा कर अमरसिंह जी ने वीर गति पाई।

केप्टेन लूकन भी तलवार चलाता हुआ बड़ी बहादुरी से टुकड़े-टुकड़े हो गया। इस थोड़ी सी सेना से होल्कर की वीरवाहिनी कहाँ रुक सकती थी। उसने मानसून की फौज काटी सो काटी, राजपूतों की भी अच्छी मरम्मत की। युद्ध बन्द हो गया किन्तु मानसून फिर बच निकला। उसका घोड़ा बहुत तेज़ था। होल्कर का क्रोध शान्त न हुआ और उसने फिर अपना घोड़ा डाला उसके पीछे। "कम्बख्त मुझे गिरफ्तार करने आया था और अब खुद भाग रहा है।" होल्कर के घुड़सवार भी उसके पीछे दौड़े जा रहे थे और उनके बाद पैदल और तोपखाना भी अपनी चाल से आगे बढ़ता जा रहा था।

जान बचाने के लिये मानसून ने पीछे मुड़ कर भी न देखा। उस का घोड़ा हवा से बातें कर रहा था। कोटा पहुँच कर कर्नल को दम लेने भर की फुर्सत मिली। ज़ालिम ने उसको झिड़क कर बाहर निकाल दिया और कहा—"तुम जैसे नामर्द के लिये हम अपना एक सिपाही भी अब नहीं कटवा सकते। जाओ अपना रास्ता नापो। तुमने हमारी जान भी मुसीबत में डाल दी है। तुम तो वो नेशन है जो नेपोलियन से लड़ सकता है। अब क्यों भागता है।"

"हम फिर आयेगा ज़ालिमसिंह। हम फिर आयेगा। हम होल्कर से

बदला लेगा। तुमने हमारा मदद नहीं किया इसका हम को बहुत सख्त अफसोस है" कह कर मानसून बड़बड़ाता हुआ भाग गया।

मानसून के बाद ज़ालिम की बारी आई। होल्कर का सारा क्रोध ज़ालिम पर उतरा। उसने कहा—"यह सब झाला के किये करम हैं। न वे अपनी फौज भेजते और न मासून बच कर भागता। हमारे दोस्त होकर हमारे दुश्मन की मदद करते हुए उन्हें शर्म नहीं आई। बोल दो हमला कोटे के ऊपर।"

फौज चढ़ आई। कोटे के द्वार बन्द हो गये। तोपें बुर्जों पर चढ़ गईं। बन्दूकें भर गईं। गालों पर मूँछें चढ़ गईं और ढालों पर तेल। नक्कारे सवेरे से शाम तक बजने लगे। होल्कर को मानसून और ज़ालिम का फर्क़ समझ में आ रहा था। वे और ही धातु के बने थे और युद्ध की कला होल्कर को पढ़ा सकते थे।

राजपूतों की सेना कील-काँटे से सुसज्जित होकर तैयार बैठी थी। फौजों में केसरिया रंग पड़ रहा था। औरतें मेंहदी लगा रही थीं। पैदल, हाथी, तोपखाना, घुड़सवार, शुतरसवार सब तैयार थे और शस्त्रों का अभ्यास कर रहे थे।

होल्कर की सेना ने चम्बल के किनारे गढ़ के दूसरी ओर अपना पड़ाव डाल रक्खा था क्योंकि गढ़ ही राजपूतों की शक्ति का केन्द्र था। नदी के किनारे पानी की बहुत सुविधा थी। घोड़े पानी पी लेते थे। घास चर लेते थे। गुप्तचरों से यशवन्त राव को पता था कि झाला ने पूरी तैयारी कर रक्खी है और वे आसानी से काबू में नहीं आ सकते। होल्कर की फौज खुले मैदान में थी और ज़ालिम की सेना सुदृढ़ प्राचीर की आड़ में सुरक्षित और सावधान थी।

होल्कर ने ज़ालिम के पास पत्र भेजा कि अगर दस लाख रुपया दो तो वापस लौट जाऊँगा। राजराणा नहीं माने। बहुत कम रुपये देने का प्रस्ताव किया। कशमकश चलती रही। न झाला ने हमला

बोला, न होल्कर ने। पैग़ाम आते-जाते रहे। एक सप्ताह बीत गया। होल्कर की रसद कम होती जा रही थी। हजारों सिपाहियों की जठराग्नि में अन्न स्वाहा हो रहा था। घोड़ों को अलग दाना मिलता था। हाथियों को दस-दस सेर आटे के रोठ सेक-सेक कर खिलाये जाते थे और चिरकुट अलग।

अन्त में यह निश्चय हुआ कि संधि की जाये। दोनों सेनानियों की भेंट चम्बल नदी के बीच में हो और वहीं रुपए पैसे का हिसाब भी तय कर लिया जाये।

दो सुन्दर नौकायें सजीं। होल्कर के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए इस ओर से पहले झाला की नाव आगे बढ़ी और फिर दूसरी ओर से होल्कर के नाविकों ने अपने डांड हिलाये। दोनों नौकाओं के साथ इधर-उधर से एक-एक नौका सुरक्षा के लिये चुने हुए सशस्त्र सैनिकों की चली।

बीच धार में आकर दोनों सेनानियों की नावें मिलीं। राजराणा आखिर राजा तो थे नहीं, केवल दीवान थे। अतः राजा के प्रति सम्मान के हेतु वे अपनी नाव छोड़ कर होल्कर की नाव में उतरे। दोनों गले मिले। होल्कर ने झाला को "काका" (पिता का छोटा भाई) कह कर पुकारा और झाला ने "भतीजा।" आधा कलह तो गले मिलते ही दूर हो गया। वृद्ध राजराणा के दोनों हाथ थाम कर होल्कर ने उन्हें बैठाया। इस पर चतुर झाला ने कहा—"ग़रीब का एक हाथ पकड़ना ही बहुत होता है।"

पान सुपारी दिए गये। बातें होने लगीं। मानसून के बच निकलने पर होल्कर ने रोष प्रकट किया और कहा—"यह सब आपकी वजह से हुआ। आपने हमारे दुश्मन की मदद की और जब हम उस का पीछा कर रहे थे तो ख़्वामख़्वाह हमें मुकन्दरे में रोक दिया गया।"

राजराणा बोले—"क्या करते। हमारी स्थिति ही ऐसी थी। अंग्रेज़ों से दुश्मनी मोल लेना भी हमारे हित में नहीं था। हम ग़रीब आदमी हैं। आप की बात और है। आप की रियासत और आप की फौज बड़ी है। इस के अलावा हम ने उस की इतनी थोड़ी सहायता की थी कि वह आप से पिटता चला गया।"

"ख़ैर, जो हुआ सो हुआ" होल्कर ने कहा—"लेकिन मेरा जो खर्च हुआ है उस का हरजाना तो मुझे दो। हज़ारों सिपाही क्या मैंने मुफ्त में मरवाये हैं ?"

"तीन लाख तो बहुत थोड़े होते हैं" यशवन्त राव ने कहा—"मुझे पूरे दस लाख रुपए चाहिये।"

"मैं क्या करूँ, मजबूर हूँ। यदि आप नहीं मानते, तो फिर जान हाज़िर है। वह देखिए, सामने बुर्ज़ पर क्या रक्खी है ?"

होल्कर का ध्यान एक भीमकाय तोप की ओर गया।

"बस हमें अभी फैसला कर लेना है" ज़ालिम ने कहा—'वर्ना अभी मेरे संकेत करते ही यह तोप आप को और मुझे, दोनों को फौरन उड़ा देगी। हज़ारों वीरों का खून बहाने से तो यही बेहतर है कि हम दोनों मर जायें और किस्सा खत्म हो। न हुए आज आप के पिता दादा मल्हारराव, वर्ना यह दिन क्यों देखना पड़ता। इस की नौबत ही क्यों आती ? भटवाड़े जैसे भयंकर युद्ध में केवल चार लाख रुपए ले कर वे सन्तुष्ट हो गए थे और आप हम से जरा सी बात पर दस लाख माँग रहे हैं। अपने पुराने रिश्ते को इतनी जल्दी न तोड़िये। दस लाख तो हमारे पास हैं ही नहीं तो देंगे कहाँ से। ईश्वर ने चाहा तो फिर कभी आप की सेवा करेंगे। अब आप प्रसन्न हो कर अपनी स्वीकृति दीजिये।"

"अच्छा, लाओ तीन लाख ही दो" होल्कर ने हँस कर कहा—

"बाक़ी फिर देखा जाएगा।"+

नावें लौटीं। लोग नीचे उतरे। सारे शहर में खुशी की लहर दौड़ गई। नाच गाने हुए। मदिरा की प्यालियाँ घूम गईं। स्त्रियों ने माँग सँवारी, आँगन में दीप जलाये, बच्चों को मिठाइयाँ खिलाईं। हजारों योद्धाओं का संहार होते-होते बच गया। शाम को आतिश-बाजी छोड़ी गई।

"काका, आप की फौज देखने को मैं उत्सुक हूँ" होल्कर ने कहा।

"जरूर मुलाहज़ा फरमाइये। मेरे घर को भी पवित्र कीजिये। वहीं छत से दृश्य अच्छा दिखाई देगा" राजराणा ने कहा।

उस ज़माने में हाथी, घोड़े, फौज पल्टन का निकलना और नक्क़ारों का बजना मनोरंजन का बहुत अच्छा साधन था जैसे आजकल लोग खिलौनों की नुमाइश देखते हैं या सिनेमा में लकड़ी की तलवारों से लड़ी हुई रक्तहीन लड़ाई देख कर खुश होते हैं।

कोटे में झाला की हवेली एक त्रिकोण में बनी हुई है जिसकी दोनों भुजायें लम्बी हैं और उनका नुक्कड़ सूरजपोल दरवाज़े की तरफ है। लम्बी-चौड़ी शानदार दावत के बाद होल्कर और राजराणा उस नुक्कड़ की ओर छत पर बैठ गये और हुक्का पीने लगे।

राजराणा ने तगड़े-तगड़े सिपाही छाँट कर कुछ हज़ार व्यक्ति हवेली के पीछे यानी त्रिकोण के धरातल की ओर जमा कर रखे थे और उन्हें दाईं भुजा की जो सड़क थी उस से चल कर नुक्कड़ के पास होते हुए बाईं भुजा की ओर जाना था। फौज को चलने का हुक्म हुआ। ढाल, तलवार लिए हुए, पगड़ियाँ कसे हुए, मूँछें ताने हुए, कमर बाँधे हुए राजपूत क़तारों में आगे बढ़े।

+ उत्तरावस्था में जब यशवन्तराव होल्कर पागल हो गया था उस समय भी ज़ालिमसिंह से दस लाख रुपया माँगना वह नहीं भूलता था और यदा-कदा बड़बड़ाता रहता था।

कुछ ही देर बाद होल्कर चकित सा हो गया और बोला—"काका, आप की फौज तो काफी बड़ी है और मर्द भी बड़े लम्बे चौड़े और जफाकश हैं।" संध्या के धुंधले प्रकाश में उसे पता नहीं था कि एक सी वेशभूषा पहने हुए वे सिपाही उस त्रिकोण का तीन चक्कर काट गए थे और झाला वहाँ बैठे-बैठे ही उस की आँखों में धूल झोंक रहे थे।

अत्यन्त विनम्रता से झाला ने उत्तर दिया—"सब आपकी कृपा है। ये तो थोड़े से हैं। जरूरत पड़ती है तो रियासत के गाँवों से काफी लोग बुला लिये जाते हैं लेकिन आप की फौज से हम ग़रीबों का क्या मुकाबला। कहाँ शेर और कहाँ बकरी।"

तीन लाख रुपए ले कर होल्कर चला गया।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

कोटे के राजस्व मंत्री ठाकुर शिवदानसिंह और राजराणा ज़ालिम सिंह बैठे परामर्श कर रहे थे। पास में सरकारी कागज़, मिस्लें और फरमान पड़े हुए थे। आदेश लिखने के लिए शिरस्तेदार अपनी कलम दवात लिए सामने बैठा था।

"इस वर्ष राज्य की कितनी आमदनी हुई ठाकुर साहेब ?"

"एक करोड़"

"बस ? यह तो बहुत थोड़ी है। इतने से रुपए से क्या बनेगा ? आये दिन हम लोगों को मराठे तंग करते रहते हैं। सिंधिया, पेशवा, होल्कर, इन सब को रुपया देते-देते हमारा दिवाला निकल रहा है। जब देखो तब रुपया, जब देखो तब रुपया। मेरे तो नाक में दम हो गया" ज़ालिम ने कहा—"आखिर हम निर्धन प्रजा का धन कब तक चूसते रहेंगे। लोग मुझे दिन रात कोसते हैं, गालियाँ देते हैं, लेकिन इतना नहीं जानते कि कोटा राज्य को मिटने से बचाने वाला अगर कोई है तो वह ज़ालिमसिंह है। अगर मैं न होता तो मराठे टिड्डियों

की तरह इस राज्य को खा गए होते। ईंट से ईंट बजा देते। इस कोटा नगर की जगह पत्थर और कूड़े के ढेर नजर आते।"

"आप ठीक फरमाते हैं राजराणा जी" ठाकुर ने कहा—"मराठों से निबटना हमारे बस का रोग नहीं है। यह काम आप ही कर सकते हैं। बरसों हो गये आप को इन से जूझते हुए। साम, दाम, दण्ड, भेद, किसी न किसी उपाय से आप इन्हें समझा ही देते हैं। लेकिन राजराणा जी, क्या इन मराठों से पिंड छुड़ाने का कोई पक्का प्रबन्ध आप नहीं कर सकते ?"

"प्रबन्ध कर सकता हूँ ठाकुर साहब" ज़ालिम ने गर्व से तन कर कहा—"प्रबन्ध कर सकता हूँ। दो दिन में इन की अक़्ल दुरुस्त कर सकता हूँ। ये कम्बख़्त जब रुपया खींचते हैं तो मेरी जान जल जाती है। बोलो, क्या हम अंग्रेज़ों से संधि कर लें ?"

अनिष्ट की आशंका से ठाकुर काँप उठा—"नहीं राजराणा जी, इन विदेशियों को सिर चढ़ाना अपने हित में नही होगा। ये फिरंगी गिरगट की तरह रंग बदलते हैं।"

"यही सोच कर तो मैं चुप हो जाता हूँ कि ये विदेसी हैं" ज़ालिम ने करम पर हाथ धर कर कहा—"वर्ना कभी का संधि कर लेता। लेकिन ठाकुर साहेब, मैंने अब तक के व्यवहार में अंग्रेज़ों को मराठों से ज़्यादा नेक और ख़ैरख़्वाह पाया है। कर्नल टाड को ही देखो। कितना शानदार आदमी है। राजपूतों से कितनी मुहब्बत करता है। एक विदेसी हो कर हमारी तवारीख में कितनी दिलचस्पी लेता है। मुझ से मिला तब कितने तपाक से पेश आया था। मुझ से मेरी बाप-दादों के, मेरी सात पीढ़ी तक के नाम पूछता था और मेरे ज़िन्दगी के हालात सुन कर बहुत खुश होता था। इतनी हमदर्दी आज तक कम से कम मराठों ने मेरे साथ नहीं दिखाई। बल्कि ये लोग तो मुझे धोखा देते रहे, बेवकूफ़ बनाते रहे। खास तौर से उस

अम्बा जी इंग्ले को मैं ज़िन्दगी भर नहीं भूल सकता जिस ने मुझे मेवाड़ में धोखा दिया। जिसे मैंने छोटा भाई समझा वही मेरा सब से बड़ा दुश्मन बन गया। होल्कर को ही देखो। अभी तीन लाख रुपये दिये हैं। ऊपर से और माँगता है। मुझे तो ये सब रुपये के लोभी लगते हैं। इन्सानियत तो इनके पास से भी नहीं गुज़री है।'

"यह सब ठीक है राजराणा जी। लेकिन परदेसियों पर एकाएक विश्वास नहीं होता। अच्छा इस विषय पर अच्छी तरह सोचेंगे।"

"ज़रूर सोचिये ठाकुर साहेब। आप भी सोचिये, मैं भी सोचूँगा। इस मामले पर हम फिर विचार करेंगे। अच्छा, आज एकादशी का व्रत है। चम्बल में जाकर स्नान करूँगा और वहीं किसी पेड़ के नीचे पूजा-पाठ करूँगा।" राजराणा ने कहा।

"जै गोर्धननाथ की" कह कर ठाकुर साहब चले गये।

राजराणा को स्नान के समय आक्रमण का भय बना रहता था। उस युग के सैनिक को अन्य व्यायाम के साथ तैरने का भी अभ्यास रखना पड़ता था। न जाने कब पानी में उतरने की ज़रूरत पड़ जाये। अतः राजराणा यदा-कदा चम्बल में तैरने जाते थे। स्नान के समय दो सशस्त्र पठान घोड़ों पर सवार होकर उनकी रक्षा के लिये नदी के किनारे खड़े रहते थे।

ज़ालिमसिंह को सब से अधिक भय महाराजा बलवन्तसिंह हाड़ा से रहता था जो बूंदी नरेश महाराव उम्मेदसिंह के पौत्र थे। उनके भाई विष्णुसिंह उस समय बूंदी में राज्य कर रहे थे। बलवन्तसिंह बड़े पराक्रमी योद्धा थे। उनके कारण विष्णुसिंह जी को अपनी गद्दी छिन जाने का भय रहता था। बूँदी राज्य की ओर से बलवन्तसिंह को गोठड़ा नामक गाँव की जागीर दी गई थी। बलवन्तसिंह चाहते थे कि समस्त हाड़ौती क्षेत्र में ज़ालिमसिंह झाला का प्रभुत्व कम हो जाये और हाड़ों का प्रभुत्व बढ़े। अतः झाला से उनकी शत्रुता थी।

राजराणा को खुश करने के लिये दोनों पठान उनकी चापलूसी किया करते थे और उनके शत्रु बलवन्तसिंह की बुराई करते रहते थे जिस का बलवन्तसिंह को पता लग गया।

अपने घोड़े की बागडोर थोड़ी ढीली करते हुए एक पठान बोला—"क्या पिद्दी और क्या पिद्दी का शोरवा। क्या बलवन्तसिंह और क्या बलवन्तसिंह का बच्चा। साले के एक हाथ मारूँ तो दस हाथ पर जाकर गिरेगा औंधा।"

पास ही में ज़ालिमसिंह तैर रहे थे। उसे समझा कर बोले—"पठान। ऐसा न कहा करो। किसी दिन अगर बलवन्त ने सुन लिया तो तुम्हारी जान की खैर नहीं है।"

"अरे हुज़ूर, आप नाहक फिक्र करते हैं" दूसरे पठान ने अकड़ कर कहा—"बलवन्त का सिर हम इस तरह उड़ा देंगे जैसे किसी भुट्टे को काट डाला हो।" ये बातें हो ही रही थीं कि वीर केसरी घोड़े की बाग थामे हुए हाथ में भाला लिये हुए झपटता हुआ आता दिखाई दिया। झाला ने घोड़े की टापों से उड़ती धूल देखते ही चम्बल छोड़ी, जल से बाहर निकले, माथे पर तिलक लगाया। हाथ में माला ली और एक चौकी पर आसन डाल कर विराजमान हो गये। आँखें मूँद कर राम का नाम जपने लगे।

जो पठान उन्हें एक हाथ से दस हाथ फेंकने वाला था वह बलवन्त के आते ही घोड़ा मोड़ कर ऐसा भागा कि फिर कभी लौट कर आने का नाम नहीं लिया और जो भुट्टे की तरह उन का सिर काटने को तैयार था वह सामने भिड़ा। नेज़ेबाज़ी शुरू हुई। चार-छः वार बचा कर बलवन्त ने ऐसा दुहत्थड़ मारा कि पठान का हाथ टूट गया। उन्होंने भाले से पठान को फोड़ कर घोड़े से ऊँचा उठा लिया और चम्बल में फेंक दिया। पठान का जल विसर्जन करके हाड़ा ने झाला की ओर देखा। आँखें मूँदे सिर नीचा किये वे माला के मनके

फेर रहे थे। माथे पर पसीना चमक रहा था किन्तु ज़ालिम ने अपना धैर्य नहीं खोया और मूर्तिवत् पद्मासन लगाये बैठे रहे।

भाले की नोक बलवन्त ने राजराणा के नग्न कंधे पर रख दी। नोक से गर्म खून टपक रहा था। मिंये को मारने से बलवन्त का खून खौल रहा था। आँखें लाल हो रही थीं। साँस थोड़ी तेज चल रही थी। मूंछें तनी हुई थीं। अपने आवेश को रोकते हुए उन्होंने ज़ालिम की तपस्या भग्न करने के लिये भाले की नोक ज़रा सी दबा कर कहा—"बोलो झाला! क्या हाल चाल हैं? अगर ज़रा और दबा दूँ तो नीचे की चौकी तक फूट जायेगी।"

"आप ऐसे ही बलवान हो, बलवन्तसिंह जी" झाला ने हाथ जोड़ कर प्रणाम करते हुए कहा—"आप धन्य हैं, आप की वीरता धन्य है। आप की माँ धन्य है जिस की कोख से ऐसा वीर पैदा हुआ। जैसे आप के पूर्वज पराक्रमी हुए, वैसे ही आप हैं। 'हामा मोकल मारियो, लाला मार्‌यो अड़सी। गेल्यो होसी भाषड़ो, जो हाँडा सूँ लड़सी।'* लेकिन आज अगर मेरी जान बख्श दो तो मैं वादा करता हूँ कि हर महीने की पहली तारीख को पाँच सौ रुपये आप की सेवा में पहुँच जाया करेंगे।"

ज़ालिमसिंह जैसे मराठों को रुपया देकर चुप करते थे उसी प्रकार बलवन्त को भी उन्होंने यही लालच दिया। उस संकट के समय और कोई तरकीब उन्हें नहीं सूझी।

"खाने पीने को ईश्वर सब को दाल रोटी देता है झाला जी। निहत्थे पुरुष पर बहादुर वार नहीं किया करते" बलवन्त बोले—"अच्छा, जै माता जी की" और वे घोड़े की बाग मोड़ कर चले गये।

---

* हामा ने राणा मोकल को मारा और लाला ने अड़सी को। वह आदमी बेवकूफ़ होगा जो हाड़ों से लड़ने बैठेगा।

राजराणा के घर से पाँच सौ रुपये प्रतिमास बलवन्त के यहाँ यावज्जीवन पहुँचते रहे ।

× × ×

"अंग्रेजों से संधि करनी ही होगी, ठाकुर साहेब। जब हमारी रक्षा का भार वे अपने कंधों पर लेने को तैयार हैं तो फिर हम क्यों यह सिर दर्द मोल लें। अब मैं बुढ्ढा हो गया। मुझ से यह नहीं होता कि मैं आये दिन घोड़े दौड़ाता फिरूँ" जालिम ने कहा।

"परन्तु राजराणा जी, इस का परिणाम यह होगा कि एक-एक करके सारे रजवाड़ों की ताक़त कम होती चली जायेगी। यह महा-शक्ति का अपमान है राजराणा जी। भगवती रूठ कर चली जायेगी। जब हम लड़ेंगे नहीं तो फिर यह सारी शक्ति ऐश आराम की तरफ झुक जायेगी। बिना लड़े सिपाही बिगड़ जाता है" ठाकुर शिवदानसिंह ने कहा।

"मैं साठ बरस का बूढ़ा हो गया। यदि आप को मेरे अनुभव पर विश्वास है तो यक़ीन मानिये कि राजपूतों की रियासत अंग्रेजों की बढ़ती हुई ताक़त को नहीं रोक पायेंगी। जब अंग्रेजो ने टीपू सुल्तान को मार दिया, मुसलमानों को पीट दिया, मराठों को कुचल दिया तो फिर राजपूत किस खेत की मूली है।

ठाकुर ने फिर कहा—"राजपूतों ने बड़े-बड़े सम्राटों से टक्कर ली है। राजस्थान की भूमि क्या वीर विहीन हो गई है जो हम फिरंगियों के आगे अपना माथा टेकें।"

"माथा कहाँ टेक रहे हैं। सिर्फ रक्षा का भार उन्हें सौंप रहे है" राजराणा ने कहा—"मैं कहे देता हूँ कि यदि इस समय राजपूतों ने संधि नहीं की तो वे अपनी रियासतें भी खो बैठेंगे। कहाँ हैं अब राणा प्रताप ? कहाँ है अब दुर्गादास जो राजस्थान को बचा सके ? इसलिये राजनीति का यह तक़ाजा है कि हम अंग्रेजों को अपना दोस्त बना कर

अपनी ताक़त बढ़ा लें। मराठों के मुक़ाबले वे कहीं अच्छे साबित होंगे। जितना रुपया हम मराठों को देते हैं उसका तो दसवाँ हिस्सा भी अंग्रेजों को नहीं देना पड़ेगा।"

"नहीं राजराणा जी" ठाकुर शिवदानसिंह बोला– "राजपूतों की शक्ति का हमेशा के लिये अंत हो जायेगा। भगवान के लिये ऐसा क़दम न उठाइये। यदि इस गिरी हुई हालत में भी हम राजपूत एक हो जायें तो सारा हिन्दुस्तान फतह कर सकते हैं।"

"कैसी बातें करते हो ठाकुर साहब। राजपूत कभी एक हुए हैं? अपने ही राज्य में देखो। हाडा और झाला एक नहीं हो सके। मेवाड़ में देखो, चूँडावत और सक्तावत एक नहीं हो सके। राणा प्रताप का सगा भाई जा कर अकबर से मिल गया था। मानसिंह को ही देखो, आगे से आगे बढ़ कर उसने मुग़लों के लिये इतनी लड़ाइयाँ लड़ीं। मानसिंह और प्रताप अगर एक हो जाते तो क्या अकबर राजस्थान में घुस सकता था? पृथ्वीराज और जयचन्द अगर एक हो जाते तो क्या गोरी हिन्दुस्तान में घुस सकता था? क्या राजपूत कभी एक हुए हैं? आप ऐसी बातें करते हो जैसे कोई सपना देख रहे हों।"

"मुझे बहुत बुरा सपना दीख रहा है राजराणा जी। अंग्रेज उंगली पकड़ते पकड़ते कहीं पहुँचा न पकड़ लें।"

"इसकी चिन्ता न करिये। हम उन्हें आन्तरिक शासन में ज़रा भी हस्तक्षेप नहीं करने देंगे। बस हम ने फैसला कर लिया है ठाकुर साहेब।"

"जैसी आप की इच्छा। आप की आज्ञा के आगे सब को सिर झुकाना होगा।"

ज़ालिमसिंह को अंग्रेजों की मैत्री से अनेक व्यक्तिगत लाभ थे। राजस्थान चाहे भाड़ में जाये, अंग्रेजों ने उन की यह शर्त मान ली थी कि ज़ालिम के वंशधर पीढ़ी दर पीढ़ी कोटे के दीवान रहेंगे और यदि कोटे के राजा कभी उन्हें दीवान रखना पसन्द न करें तो उन्हें अपना

आधा राज्य झालों को देना होगा जिसके वे स्वतन्त्र शासक बन जायेंगे। ज़ालिम ने एक गुप्त संधि करके अंग्रेज़ों से इस शर्त पर हस्ताक्षर करवा लिये और कोटा राज्य की ओर से विधिवत् एक संधि अलग की गई जिस के अनुसार समस्त आक्रमणों से कोटे की रक्षा करने का भार अंग्रेजों ने अपने कंधों पर ले लिया।

अंग्रेजों के साथ राजपूतों की यह पहली संधि थी जिस के बाद से ही राजपूतों की शक्ति का ह्रास होता चला गया और वे अंग्रेज़ों के हाथ में खिलौने बन कर रह गये।। खैर, ज़ालिम को तो अपना उल्लू सीधा करना था। उधर अंग्रेज़ को इस बात से क्या बहस थी कि कोटा राज्य एक रहे या उस के दो टुकड़े हो जायें। उनकी भेद नीति से तो राजपूतों की जमीन के जितने टुकड़े हों उतना ही उन के लिये श्रेयस्कर था।

अस्तु, फिरंगियों की दोस्ती से ज़ालिमसिंह अपने समस्त शत्रुओं से एक बार ही निश्चिंत हो गये। न उन्हें सिंधिया का भय रहा न हाड़ों का, न होल्कर का न पिंडारियों का। बढ़ती हुई अवस्था के कारण उन के हाथ पाँव जवाब देते जा रहे थे। धीरे-धीरे ज़ालिम की गुप्त संधि का हाड़ा राजपूतों को पता चल गया और सारे राज्य में विद्रोह की आग फैल गई।

यह आग प्रज्वलित उस समय हुई जब ज़ालिम के हाथ के खिलौने यानी उन के भानजे महाराव उम्मेदसिंह स्वर्ग सिधार गये और जब राजसिंहासन पर उम्मेद के ज्येष्ठ पुत्र महाराव किशोर सिंह विराजमान हुए। वीर किशोर सिंह के राजनीतिक मंच पर पदार्पण करते ही वह मंच हिल उठा और कशमकश एकदम तेज़ हो गई।

बारहवाँ परिच्छेद

"मुसलमानी को घर में रख कर आपने जो धर्म भ्रष्ट किया है उसी का फल ईश्वर आपको दे रहा है" सीसोदिनी ने कहा—"मन्नी का बेटा जो करम कर रहा है उस से अब तक आप की आखें नहीं खुलीं ?"

ज़ालिमसिंह अब पहले के से ज़ालिम नहीं रहे थे। वृद्धावस्था अपने पूरे रौब-दौब से उन के शरीर पर अमर बेल की तरह छा गई थी। गालों पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं। बाल सफेद हो चले थे। राजपत्रों पर नाम लिखते समय हाथ काँप उठता था। किन्तु बुद्धि और कपटाचरण उन का अब तक वैसे का वैसा था। चाणक्य की भाँति अपनी कूटनीति से वे बड़ों-बड़ों को उखाड़ सकते थे और उखाड़ कर उनकी जड़ों में दही भर सकते थे।

"मैंने कोई धर्मभ्रष्ट नहीं किया। स्त्रियाँ दूर तक नहीं देख पातीं। उनकी नज़र सिर्फ रोटी, पानी, कपड़े लत्ते, ज़ेवर, बर्तन, पुत्र-पुत्री, पड़ौसिन और सौत तक ही सीमित रहती है। सौतिया डाह

तो संसार भर में प्रसिद्ध है। एक औरत क्या रख ली है, जीना हराम कर दिया है तुम ने।"

"कोई देखे न देखे ईश्वर तो देखता है। एक स्त्री की अवहेलना करके दूसरी से प्रेम करना कौन से धर्मग्रन्थ में लिखा है। म्लेच्छ की कन्या आर्य के घर में रखना कौन से धर्मग्रन्थ में लिखा है?"

"रहने दो तुम्हारे धर्मग्रंथों को" ज़ालिम ने कहा—"तुम क्या जानो धर्म किस चिड़िया का नाम है। राजपूत का धर्म उसकी तलवार में रहता है। वीर भोग्या वसुन्धरा। भगवान् कृष्ण ने गीता में स्वयं कहा है—"हतो वा प्राप्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्"। मेरी इतनी उम्र हो गई लेकिन मेरी अब भी यह इच्छा है कि मैं संघर्ष करता रहूं और किसी संघर्ष में ही अपने प्राण दूं। युद्ध में मरने से क्षत्रिय सीधे स्वर्ग में जाते हैं। समझीं?"

"समझ गई। जाओ हमला बोल दो किसी राज्य पर। आपने सारी उम्र और किया ही क्या है। गोर्धनदास को बना दो अपना फ़ौजदार और मेरे लड़के को भेज दो यहाँ से बाहर" सीसोदिनी ने कहा।

"गोर्धनदास? उसे मैं खुद समझ लूंगा। तुम क्यों बीच में अपनी टांग अड़ाती हो" कह कर राजराणा जनानखाने से बाहर आये। वस्तुतः गोर्धनदास पर उनका अत्यधिक स्नेह था। ज्येष्ठ पुत्र माधोसिंह विलासप्रिय था किन्तु गोर्धनदास में अपने पिता की सारी विशेषतायें थीं—वही हौसला, वही षडयंत्रकारी बुद्धि, वही मेल-जोल, वही महत्वाकांक्षा।

एक दिन आवेश में आकर गोर्धनदास ने अपनी माँ से कहा—"अम्मीजान! जिस बाप की औलाद माधोसिंह है उसी बाप की औलाद मैं हूँ। फिर क्या वजह है कि उसे इतनी इज्जत दी जाती है और मुझ से कोई बात करना भी पसन्द नहीं करता। मेरे हाथ का पानी तक कोई नहीं पीता। मेरे साथ बैठकर कोई रोटी तक नहीं खाता। मुझे सबसे अलग बिठाया जाता है। ज़लालत की हद होती है अम्मीजान।

ये बातें मैं कब तक बर्दाश्त करता रहूँ।"

"ऐसा न कहो बेटा" मन्नी ने समझाते हुए कहा—"तुम यह बात बार-बार भूल जाते हो कि माधोसिंह तुमसे उम्र में बड़ा है। अपने वालिद की गद्दी पर बैठने का हक़ उसका है तुम्हारा नहीं। अपने वालिद का ओहदा और जागीर का वारिस वह है, तुम नहीं हो। राजपूतों का हमेशा से यही तरीक़ा है। तुम भी राजपूत की औलाद हो। तुम्हारा यह फर्ज़ है कि जो तरीक़ा राजपूतों में हमेशा से चला आता है उसके खिलाफ किसी किस्म की बग़ावत न करो। तुम्हारा फर्ज़ है कि अपने ज़ईफ वालिद का हुक्म ताउम्र बजाते रहो। अपने बड़े भाई को हमेशा अपना बुजुर्ग समझो और उसकी इज़्ज़त करो। अपने बारे में तुम्हें किसी किस्म की शिकायत नहीं होनी चाहिए। खाने पीने को मालिक ने बहुत दे रक्खा है। एक राजपूत के बेटे को यह ज़ेबा नहीं देता कि वह अपने वाल्देन की हुक्म उदूली करे या उन्हें कोई सदमा पहुँचाये। आइन्दा ऐसे अल्फाज़ कभी तुम्हारी ज़बान पर नहीं आने चाहिए।"

गोर्धनदास ने अपनी माँ के आगे कुछ न कहा किन्तु मन ही मन उसमें अपने विलासी बन्धु के प्रति घृणा और ईर्ष्या की चिनगारियाँ सुलग रही थीं। कोटा राज्य का फौजदार बनने के लिए वह अपने आप को योग्य समझता था और अपने भाई को अयोग्य। उधर माधोसिंह ऐसे बहुमूल्य वस्त्र पहनता था जैसे कोटा नरेश भी नहीं पहनते थे। इन्हीं कारणों से ज़ालिम भी उससे अप्रसन्न रहते थे और उसे डाँटते रहते थे।

गोर्धनदास अपने भाई से अधिक कुशल होने के कारण लोकप्रिय हो गया। ग़रीब लोगों की वह रुपये पैसे से मदद करता था। मुसलमान सिपाहियों को छाती से चिपकाये रखता था और राजपूतों का भी आदर करता था। सामाजिक ऊँच-नीच के व्यवहार से कुछ लोगों को गोर्धन-दास से सहानुभूति हो गई यद्यपि वे भी सामाजिक बन्धनों के

दास थे लोकप्रिय गोर्धनदास को एक लोकप्रिय मित्र भी मिल गया और यह मित्र था महाराव किशोरसिंह का छोटा भाई पृथ्वीसिंह । दोनों की मिलीभगत चलने लगी । राजमहल में प्रतिदिन दोनों मित्र कई घंटों तक साथ रहते थे । शिकार के लिए साथ-साथ जाते और मांस भक्षण साथ-साथ करते थे ।

पृथ्वीसिंह बड़े वीर और साहसी नवयुवक थे । जनता उनका बहुत सम्मान करती थी । उन्हें ज़ालिम की यह शर्त कतई मंजूर न थी कि पीढ़ी दर पीढ़ी राजराणा के वंशज कोटे के दीवान बने रहें । वे ज़ालिम-सिंह को अन्य नौकरों की भांति एक वेतन भोगी नौकर के रूप में देखते थे । वस्तुतः समस्त हाड़ा राजपूतों में झाला के प्रति रोष और असंतोष पैदा हो गया था । उन्हें विश्वास था कि किसी न किसी दिन कोटा राज्य के दो टुकड़े हो जायेंगे और झाला वंश का एक पृथक राज्य स्थापित हो जायेगा ।

ज्येष्ठ भ्राता महराव किशोरसिंह के साथ राजमहल में रहने के कारण पृथ्वीसिंह उन्हें प्रभावित कर सकते थे । राजभक्ति का परिचय गोर्धनदास ने भी अच्छा दिया यद्यपि इस कार्य में उसका स्वार्थ निहित था । उसने इस शर्त की निन्दा करना आरम्भ किया कि ज़ालिम के वंशधरों को सदैव दीवान के पद पर रखा जाये । असंतोष धीरे-धीरे चारों ओर बढ़ने लगा और गतिविधियों ने सैनिक तैयारियों का रूप धारण कर लिया । किन्तु ज़ालिमसिंह बच्चों के इस खिलवाड़ से भयभीत होने वाले न थे और अब तो उन्हें अंग्रेज़ जैसे शक्तिसम्पन्न मित्र मिल चुके थे ।

गढ़ में जब राजपूत सरदार अधिक एकत्र होने लगे तो झाला को आशंका हुई कि कहीं सब मिलकर उनकी हवेली पर हमला न बोल दें और अपने रास्ते की रुकावट को साफ करने का प्रयत्न न करने लगें । अतः पहले से पहले उन्होंने इसका उपाय किया । एक दिन प्रातःकाल

घोड़े पर जीन कसवाकर वे सवार हुए और पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल जेम्स टॉड के पास पहुंचे।

"पधारिये राजराना साहिब" टॉडने उठकर अभिवादन किया "आपको देखकर हम बहुत खुश हुआ। कहिये, हमारे पास कैसे तकलीफ फरमाया।"

"बात यह है साहब बहादुर कि महाराव किशोरसिंह अभी नये नये राजा हैं और उनमें नया-नया जोश है। मैं बुड्ढा आदमी हूँ। मुझे और मेरे लड़के को निकाल कर वे अपने आदमियों को नौकर रखना चाहते हैं" राजराणा ने कहा।

"यह कैसे हो सकता है। कम्पनी सरकार ने आपसे सुलह किया है कि हम आपको और आपकी औलाद को बराबर कोटा का प्राइम मिनिस्टर बनाकर रक्खेगा" टॉड बोला—"आप हमको इसके बारे में क्या करना माँगता है। हम तो तैयार है आपका हेल्प यानी मदद करने के लिए।"

"इसका एक ही इलाज है साहब बहादुर, और वह यह है कि आप की फौज और मेरी फौज किले को चारों तरफ से घेर ले ताकि जो राजपूत सरदार वहां इकट्ठे हो गये हैं उनको बचकर भागने का मौक़ा न मिले और जो लोग इस वक्त महराव को भड़काने में अगुवा हैं उन को पकड़ कर सख्त से सख्त सजा दी जाये।"

"बिल्कुल ठीक है राजराना साहिब। हम उन सबका दाना पानी बन्द करना मांगता है। उनका दिमाग़ बिल्कुल दुरुस्त करना माँगता है।"

गढ़ को चारों ओर से घेर लिया गया। न कोई भीतर आ सकता था और न कोई बाहर जा सकता था। खाद्य सामग्री का आनाजाना भी बन्द था। गढ़ के दरवाज़ों में ताले पड़े हुए थे। महाराव किशोरसिंह के गुप्तचर चम्बल नदी में उतर-उतर कर बाहर पहुंचे। महाराव ने राजपूत जागीरदारों के पास संदेश भिजवाया कि आज कोटे के घर पर

मुसीबत पड़ी है। अगर रोटी घर पर खा रहे हो तो पानी यहां आकर पीना। तुरन्त आ जाना।

रातों-रात पाँच सौ वीर इकठ्ठे हो गये। चम्बल नदी में कूद-कूद कर एक खिड़की के रास्ते गढ़ में आ घुसे। पिंजड़े में बन्द शेर की तरह वीर उस गढ़ के भीतर चक्कर काटने लगे। बुर्जों पर तोपें चढ़ाने लगे। तलवारें माँजने लगे।

दूसरे दिन प्रातः काल महाराव किशोरसिंह ने सब सरदारों को इकठ्ठा किया और कहा—"हमारी रसद बिल्कुल बन्द है। चारों तरफ से गढ़ घिरा हुआ है। अगर हमने यही रहकर लड़ाई छेड़ी तो हम कितने दिन लड़ पायेंगे। चार छः दिन में भूखों मर जायेंगे। इसलिए सबसे पहले हमें यहाँ से बाहर निकलना जरूरी है। हमारी किस्मत का फैसला तलवार से होगा।"

घोड़ों पर जीन कसे गये। कुछ लोग पैदल चलने को तैयार हुए। तलवारें मियान से बाहर निकलीं। गढ़ का दरवाजा खुला। "महाराव किशोरसिंह जी की जय" के साथ राजपूत बाहर निकले। महाराव का घोड़ा सबसे पहले बाहर आया और पीछे दूसरे सवार। अपने राजा को देखकर विपक्षी सेना चुपचाप खड़ी रही। न कोई तोप चली और न कोई बन्दूक। सेना तो उन्हीं की थी। केवल सेनापति ने उसे वहाँ ला खड़ा किया था। जालिम और टाँड अपने स्थान पर खड़े रहे। किसी को हमला करने का आदेश नहीं दिया गया।

महराव और उनके साथी शहर से निकल कर चुपचाप बाहर चले गये। कुछ मील दूर रंगबाड़ी नामक स्थान पर घोड़े रोके गये। विचार विमर्श और जलपान के लिए महाराव और उनके साथी घोड़ों से नीचे उतरे।

इधर टाँड ने जालिमसिंह से कहा—"कहिए राजराना साहिब। अब आप हमको क्या करना माँगता है। कोटा का तख्त इस वक्त आपके

हाथ में है।"

"मुझे यह तख्त नहीं चाहिए साहब बहादुर। यह तख्त जिसका है उसे ही मुबारक रहे। मेरा तख्त तो मेरे घोड़े की पीठ पर रहता है। अगर इस तख्त का ही मुझे लालच होता तो जिस वक्त महाराव उम्मेद सिंह केवल दस वर्ष के थे उस समय मैं आसानी से इस पर बैठ सकता था। लेकिन नहीं। मैंने उन्हें अपने हाथ से पाल पोस कर बड़ा किया और अब इस बुढ़ापे में चाहे कुछ भी हो, मैं नमकहराम बनने का कलंक कभी अपने ऊपर नहीं लगने दूँगा।"

"बहुत अच्छा" टॉड ने कहा—"तो फिर हम खुद जाकर महाराव को यहाँ लायेगा"। कर्नल ने घोड़े के एड़ लगाई और थोड़ी देर में रंगबाड़ी जा पहुंचा। राजपूतों ने बड़े तपाक से उसका स्वागत किया। "आइये साहब बहादुर। तशरीफ़ रखिये।"

"हम महाराव साहिब से अलग बात करना माँगता है।"

"अच्छा अलग सही।" महाराव उसको एक ओर ले गये। टॉड ने कहा—"हम अंग्रेज अपनी बात का पक्का है। हमने सुलह किया है कि हम कोटा रियासत का दोस्त है। हमने यह भी सुलह किया है कि हम जालिमसिंह का दोस्त है। हम उसको और उसकी औलाद को आपका दीवान मानता है। अगर आप उसको अपना दीवान नहीं मानता तो हमारी सुलह की तौहीन होता है इसलिए हम जालिमसिंह की मदद करेगा। हम आपका और जालिमसिंह का समझौता करना माँगता है, लरना नहीं माँगता।"

"हम आपको वापस कोटा ले जाकर तख्तनशीन कराना माँगता है।"

यह कह कर टॉड ने महाराव को उनके घोड़े की बाग थमाई और खुद भी घोड़े पर चढ़कर चल दिया। राजपूत बहुत बड़बड़ाये। एकाध गाली भी कर्नल के कान में पड़ी, लेकिन अंग्रेज कान दबाये चला गया।

महाराव किशोरसिंह का पुनः राज्याभिषेक किया गया। विद्रोही

सामन्त नगर में बुला लिए गये। पुरोहित ने राजतिलक किया। कर्नल टॉड ने किरच आगे झुकाकर सलाम किया। राजराणा ज़ालिमसिंह को पुनः कोटे का दीवान घोषित किया गया और उनके पुत्र माधोसिंह को रियासत का फ़ौजदार।

राजदरबार विसर्जित हुआ। सभा से बाहर निकलते ही राजराणा की बंक दृष्टि गोर्धनदास पर पड़ी। चेहरा लाल हो गया। तमक कर बोले—"गोर्धनदास! नीच! गद्दार! क्या तू अपनी हरकतों से बाज़ नहीं आयेगा? मेरा खून और मुझ ही से बग़ावत करे! ज़ालिमसिंह इसे कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता। निकल जा यहाँ से बाहर। निकल जा हमेशा के लिए इस राज्य से बाहर और अपना काला मुंह कभी मत दिखाना अपने बाप को। अगर तेरी जगह कोई और होता तो अब तक मैं उसका सिर काट लेता, और तू है बेशर्म, बेहया, जिसने अपने बाप के साथ ग़द्दारी की। दूर हो मेरी नज़रों से।"

गोर्धनदास सिर नीचा किए चल दिया। राज्य के बाहर जा कर उस ने जीवन के शेष दिन दिल्ली में बिताए।

तेरहवाँ परिच्छेद

गोर्धनदास चला गया किन्तु उसका मित्र अभी मौजूद था जिस ने विद्रोह की चिनगारी को सुलगाए रक्खा। पृथ्वीसिंह ज़ालिम से अधिक जलभुन गए और वे उन्हें सत्ताहीन बनाने की चेष्टा करने लगे। एक दिन उन्होंने महाराव किशोर सिंह से कहा—"दादाभाई, ऐसे जीवन से तो मरना ही अच्छा है कि हम लोग ज़ालिमसिंह के ताबेदार की तरह पड़े रहें और वे जैसे चाहें वैसे कठपुतलियों की तरह हमें नचाते रहें। यह भी कोई ज़िन्दगी है।"

"मुझे तो खुद ऐसी ज़िन्दगी से सख्त नफ़रत हो गई है भाई। लेकिन करूँ क्या? मजबूरी का नाम सब्र है। सोचता हूँ कि बुढ्ढे नाना कितने से दिन और जियेंगे। अस्सी बरस के तो हो चुके।"

"अजी ज़ालिम की कुछ न पूछिए। न जाने कितने बरस और खींच जायें" पृथ्वीसिंह ने कहा—"अभी तो वे हाथी पर बैठ कर शिकार खेलने जाते हैं। दीखता कम है मगर बन्दूक चलाते हैं। दुनियाँ को यह दिखाते हैं कि हमें खूब अच्छी तरह दीखता है। अगर हम इसी

उम्मीद पर बैठे रहे कि ये कब मरें और हम कब श्राद्ध करें जो अभी बरसों तक इन्तज़ार करना पड़ेगा। पुराने चावल बड़ी मुश्किल से पकते हैं। यदि आप ज़ालिमसिंह को उखाड़ना चाहते हैं तो फिर चलिए, घोड़े पर चढ़िए और सारे राज्य का दौरा करके फ़ौज इकट्ठी करिए। फिर देखिए कि हमारी ताक़त किस तरह बढ़ती है।

"तरकीब तो अच्छी है" महाराव किशोरसिंह ने कहा—"कुछ चुने हुए लोगों को ले कर हमें प्रस्थान कर देना चाहिए।"

घोड़े कसे गये। वीरों ने भाले उठाये। दौरा शुरू हुआ। उस समय की प्रजा बहुत राजभक्त होती थी। जिस गाँव में महाराव पहुँचते उसी गाँव में राजा की जय के नारे लगने लगते, ग्रामीणों की भीड़ इकट्ठी हो जाती, राजा को माला पहनाई जाती, रुपयों की थैलियां भेंट की जातीं। वीर तलवार ले-ले कर राजा की सेना में भर्ती हो जाते। देखते ही देखते आठ हज़ार योद्धा एकत्र हो गए। ढाल तलवारें बन्दूकें, भाले, बर्छे, गोला बारूद, तोप, जम्बूर आदि युद्धोपकरण जुटाए गए।

राजराणा ज़ालिमसिंह इस समस्त गतिविधि से पूर्णरूपेण परिचित थे किन्तु राजा को अपने राज्य में घूमने-फिरने से रोक भी नहीं सकते थे। वृद्धावस्था होने के कारण उन में इतनी शक्ति नहीं थी कि वे भी इधर-उधर घूम कर लोगों को अपने बस में कर सकें अन्यथा अपनी जवानी में ज़ालिम भी अपने घोड़ों की टापों से सारी रियासत को रौंद चुके थे। जीर्ण-शीर्ण शरीर हो जाने से वे अपनी हवेली में ही अधिकतर समय काटते थे। अधिकांश जागीरदार अपने अधिपति से मिले हुए थे। ज़ालिम की चारों ओर निन्दा की जाती थी। किन्तु राजराणा इन बातों से ज़रा भी नहीं घबराए। उदासी की कोई शिकन उनके चेहरे पर नहीं आई। अंग्रेज़ों की सहायता का उन्हें को पूरा विश्वास था और अंग्रेज़ों की कम्पनी ज़ालिम के परम मित्र कर्नल टॉड के सेनापतित्व में रहती थी।

धीरे-धीरे विद्रोह की दावानल फैली और राज्य के कोने कोने को उसने प्रज्वलित कर दिया। युद्ध के ढोल बजने लगे। चारों ओर ज़ालिम के विपक्षी घूमने लगे। राजराणा ने टॉड से मिलने का निश्चय किया। बिना युद्ध की चर्चा किये उसे उन्होंने रात्रिभोज के लिये अपने घर आमंत्रित किया।

रात के ठीक आठ बजे साहब घोड़े से उतरा। उसके साथ चार घुड़सवार और आये थे। हवेली के दरवाज़े पर खड़े होकर राजराणा ने स्वागत किया। दरवाज़ से लेकर भीतर भोजन के कमरे तक लाल चद्दर बिछी हुई थी। झाड़फानूस प्रकाश से जगमगा रहे थे। तेल लगी हुई चमकती ढालें, मख़मल के मियान और सुनहरी मूठ की तलवारें दीवारों पर लटक रही थीं। नीचे क़ालीन के ऊपर शेर, हिरन और रींछ की खालें पड़ी हुई थीं। बारहसिंगों के सींग टंगे हुए थे। हर ताक़ में फूलदान, इत्रदान, पानदान, शीशा आदि वस्तुएँ रखी हुई थीं। ताक़ के भीतर दीवार पर चित्राम हो रहा था और सुन्दर कामनियों, अभिसारिकाओं के चित्र चित्रित थे। कमरे की दीवारों पर युद्ध, शिकार और फौजी सवारियों के चित्र बने हुए थे। इस सब सजावट को देखकर अंग्रेज़ खुशी से मस्त हो गया मानो स्वर्ग के किसी क्रीड़ा-भवन में आ गया हो। दो नौकरों ने आगे बढ़कर उसके बूट उतारे। एक नौकर ने पीछे खड़े होकर कोट उतारने में मदद की। चौथे ने उसके रुमाल में इत्र लगाया तो पाँचवें ने पान सुपारी और इलायची पेश की।

मख़मल के सुन्दर और गद्दीदार क़ालीन पर सफेद चद्दर बिछी हुई थी। पीछे दो मसनद लगे हुए थे। राजराणा और कर्नल टॉड "पहले आप" कहते हुए आसीन हुए। शिष्टाचार की बातें शुरू हुईं। कुछ ही देर में ताज़ा बोतलें खुलीं। वारुणी प्यालियों में उतर आई। पापड़ फूटने लगे। मुंह में पानी आने लगा। जाम पर जाम खाली होने लगे। बहुत दिनों के बाद अंग्रेज़ ने इतनी बढ़िया शराब का मज़ा लिया था

और केसर कस्तूरी की सुगन्ध तो उसने मदिरा में पहली बार ही सूंघी। घूंट लेते-लेते कर्नल की आँखों में सुरूर चमकने लगा। बात चीत थोड़ी खुल कर होने लगी। किन्तु राजराणा इतनी आसानी से डूबने वाले न थे। ऐसी शराब न जाने कितनों को पिला चुके थे। जाम होठों से लगा कर नीचे रख देते थे।

राजराणा ने भोजन लाने का आदेश दिया। सामने दो सुन्दर चौकियाँ डाली गईं। थाल परसे गये। आवरण वस्त्र हटाय गये। इतनी कटोरियां देखकर टॉड चौंक सा गया किन्तु भोजन के स्वाद का ध्यान आते ही उसका आश्चर्य हर्ष में बदल गया। खाना शुरू हुआ। मुसलमान बावर्चियों के सारे कमाल गोश्त और पुलाव के रूप में निखर आये थे। टॉड दोनों हाथों से हड्डियाँ उठाकर मुंह से गोश्त तोड़ने लगा, नली चूसने लगा। मिष्ठान्न को तो उसने दूर से ही नमस्कार किया। बकरे के गोश्त का प्याला खाली हो गया। दूसरी बार बकरा नहीं आया बल्कि साबत तीतर। माँसभक्षी अंग्रेज़ ने थोड़ी देर में पूरा तीतर अपने पेट के हवाले किया। खुशी और सुरूर से झूमता हुआ बोला—"राजराना साहिब। हम रोस्ट तीतर बहुत पसन्द करता है। हमारी तरफ से आप खानसामा को शुक्रिया अदा करना माँगता हैं।"

'शुक्रिया तो मैं अदा कर दूंगा साहब बहादुर" ज़ालिम ने अशर्फी नौकर की ओर फेंक कर कहा—"लेकिन रियासत की हालत इतनी नाजुक है कि मुझे रात को नींद नहीं आती है।"

"अच्छा ?" टॉड ने गोश्त तोड़ते हुए कहा—"क्या आप को लोहे के पिंजरे में भी नहीं आता है ?"

"जी नहीं साहब। आप को मालूम है कि हमारे राजा साहिब ने आठ हजार सिपाही इकट्ठे कर लिए हैं और पाँच सौ हाड़ा राजपूत घोड़ों पर सवार हो कर उन के झंडे के साथ घूम रहे हैं। उन की फौज दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। और तो और सौ सिपाहियों

को बूँदी से साथ ले कर बलवन्तसिंह भी उन से जा मिला है।"

"अच्छा ? यह बात है ? कोई परवाह नहीं राजराना साहिब, डोन्ट वर्री, डोन्ट वर्री" अंग्रेज़ ने मूँछों पर ताव देते हुए कहा—"हम उन सब को एक बहुत अच्छा सबक़ सिखाना माँगता है जिस को वे लोग ज़िन्दगी भर याद रक्खेगा। हमारे पीछे सारा कम्पनी गवर्मेन्ट है। हम अपना कमान भेज देगा।"

"तो फिर साहब बहादुर, जंग के लिए हुक्म दीजिए। इधर हम अपनी फौज ले कर आगे बढ़ते हैं। उधर आप अपनी कम्पनी का कमान अपने हाथ में ले कर हमारे साथ चलिए" राजराणा ने कहा।

"क़ुबूल है। हम को पूरा क़ुबूल है। हम आप का पक्का दोस्त है और आप की इज्ज़त करता है। हम तो कल ही स्टार्ट यानी चलना माँगता है।"

"हम तैयार हैं साहब बहादुर। कल सुबह कूच बोल देंगे।"

"बिल्लकुल्ल ठीक है" कह कर साहब ने झूमते हुए बिदा ली। चार बोतलें बढ़िया शराब की उस के साथ लदवा कर राजराणा ने अपनी बग्घी में बिठला कर उसे बँगले पहुँचवाया।

× × ×

माँगरोल क़स्बे के पास महाराव किशोरसिंह की सेना ने पड़ाव डाल रक्खा था। ज़ालिम और टॉड की फौजें भी आ पहुँची। इसी माँगरोल से कुछ मील दूर भटवाड़ा गाँव था। जहाँ साठ वर्ष पहले लोमहर्षक युद्ध में ज़ालिमसिंह ने जयपुर की साठ हजार सेना को परास्त किया था। साठ वर्ष की इस लम्बी अवधि में दुनियाँ बहुत बदल चुकी थी। तीन पीढ़ियाँ ज़ालिम की आँखों के आगे गुज़र चुकी थीं। जो जागीरदार या जिन के बाप दादे ज़ालिम के साथ कंधे से कंधा भिड़ा कर उन के पक्ष में लड़े थे वे ही आज उन के सामने खड़े उन्हें ललकार रहे थे और वे अकेले भीष्म पितामह की तरह आपने विगत युग के

जर्जर प्रतीक के रूप में एक विशाल हाथी के हौदे पर विराजमान थे। केसरिया पगड़ी बँधी हुई थी। सफेद दाढ़ी के सफेद बाल अब भी काफी तने हुए थे।

ज़ालिम को अपनी सेना पर विश्वास न था और न सेना को अपने सेनापति पर। जिस सेना का सेनापति अंधा हो, उस सेनापति में सेना के लड़ते, मरते, भागते, दौड़ते, हटते, बढ़ते समय सैन्य संचालन की क्षमता नहीं होती। फिर भी ज़ालिम का हाथी फ़ौज में घूम रहा था और वे अपने वाग्बल से सैनिकों में जोश भर रहे थे। "महताबखाँ, तोपें तैयार रक्खो, सबसे पहले दुश्मन की तोपों को निशाना लगा कर उन्हें खारिज कर देना—दलेल खाँ! तुम पैदलों को लेकर बीच में आगे बढ़ना। महतावखाँ! तुम घुड़सवारों के साथ बाईं तरफ से हमला बोल देना—लेकिन देखो अंग्रेज़ कम्पनी को पहले मौक़ा देना। अगर वे लोग लड़ते लड़ते थक जायें तो तुम फौरन उनकी मदद करना। पहला हमला हमारी तरफ से नहीं होना चाहिये। यह लड़ाई हमारी तरफ से शुरू नहीं हो। इसका पूरा ध्यान रखना।"

चतुर राजराणा ने राजपूतों की दोनों सेनाओं के बीच में अंग्रेज़ कम्पनी को खड़ी रहने के लिये कहा था। उन्हें भय था कि यदि अंग्रेज बीच में न रहे तो राजराणा की सेना महाराव की सेना से मिल जायेगी क्योंकि वह सेना भी वास्तव में महाराव की ही सेना थी। यदि न भी मिली तो हथियार डाल देगी या मैदान छोड़कर भाग जायेगी।

उधर महाराव के ग्रामीण बन्धु मर मिटने को तैयार खड़े थे। बीच में ग्रामीणों को रखा गया ताकि कोई भागने न पाये। बाईं ओर घुड़सवार और दाईं ओर तोपें लगी हुई थीं। कर्नल टॉड ने आज भी मध्यस्थ का काम किया। अपना घोड़ा आगे बढ़ाया, राजा के पास जाकर सलाम झुकाया और बोला—"गुड मार्निंग महाराव साहिब! हम आपके पास सुलह का पैग़ाम लेकर आया है। हम आपको वापस

कोटा ले जाना माँगता है और आपको वापस तख्तनशीन करना माँगता है। हम आपका दोस्त है और हम जालिमसिंह का भी दोस्त है। हम आप दोनों के बीच में सुलह कराना माँगता है।"

"साहब बहादुर, हम तो खुद अपने नाना जालिमसिंह की बहुत इज्जत करते हैं और हमेशा उन्हें अपना दीवान बनाये रखना चाहते हैं लेकिन हम उनकी यह शर्त मंजूर नहीं कर सकते कि पीढ़ी दर पीढ़ी उनके बेटे पोते हमारे दीवान बने रहें या हम इसके एवज में उन्हें आधा राज्य दे दें। हमने ऐसी कोई शर्त न उनसे की है और न कम्पनी सरकार से की है। हम कठपुतली की तरह तख्त पर बैठे रहना नहीं चाहते। हम तो जो हमारा पैतृक अधिकार है उसे चाहते हैं। जालिमसिंह हमारे नौकर हैं, मालिक नहीं हैं।"

"हम मजबूर है योर हाइनेस। हमारा कम्पनी गवर्मेन्ट ने जो सुलह जालिमसिंह के साथ किया है उसकी तमाम शर्तों पर हम क़ायम रहेगा। हम कम्पनी सरकार का आर्डर ओबे करेगा यानी उसकी तामील करेगा। हम आपको आधा घंटा का टाइम देता है। एक बार फिर सोच लीजिये वर्ना उसके बाद हम हमला करने पर मजबूर हो जायेगा" कह कर कर्नल ने अपना घोड़ा मोड़ लिया।

आधा घंटा बीता। अंग्रेज कम्पनी का बिगुल बजा। रिसाला आगे बढ़ा। राजपूत अपनी जगह डटे रहे। घोड़ों ने आगे बढ़कर घोड़ों से टक्कर ली। पहली झपट में ही हाड़ों ने लेफ्टीनेन्ट क्लर्क और लेफ्टीनेन्ट रीड को काट दिया। अंग्रेजों की राजपूतों से पहली टक्कर थी। उन्हें पता नहीं था कि ये लोग इतने जम कर लड़ते हैं। लेफ्टीनेन्ट कर्नल रिज के भी एक तलवार से दो टुकड़े होने ही वाले थे कि उन्होंने बग़ल से पिस्तौल खींच कर दुश्मन की छाती पर गोली मारी और भाग कर अपनी सेना के पीछे चले गये जहाँ कर्नल टॉड खड़ा हुआ सिपाहियों को गोलियाँ चलाने का आदेश दे रहा था। हेनरी मार्टिनें कड़ाकड़ कड़ाकड़

कड़क रही थीं। राजराणा की सेना ने भी तोपें दागना शुरू किया।

दोनों ओर से गोलाबारी जारी रही। कम्पनी के रिसाले के सब घुड़सवार युद्धकला में भली भांति दक्ष थे और उनके हमले से बीच में खड़ी हुई महाराव की देहाती सेना के पाँव उखड़ गये और वह उल्टे पाँव भागी। छुरी, गंडासे, तलवारें, ढालें रणक्षेत्र में इधर उधर बिखर गईं।

अधिक देर तक टिकना असंभव जान कर महाराव किशोरसिंह चार सौ घुड़सवारों के साथ पीछे हटे। उनके हटने पर झाला के पैदल और अंग्रेज़ों का रिसाला आगे बढ़ा। अंग्रेज़ कम्पनी की गोलियों से बचने के लिये महाराव और उनके अश्वारोहियों ने एक मक्का के खेत की शरण ली। मक्का इतनी ऊँची उगी हुई थी कि घुड़सवार नज़र नहीं आते थे।

किन्तु इस तरह जान बचाकर छिपना महाराव के भाई पृथ्वीसिंह से न सहा गया। उनका खून आग की तरह जल रहा था। चेहरा क्रोध से लाल हो रहा था। उन्होंने अपने वीर साथियों को ललकारा और दुश्मनों पर पिल पड़े। मारकाट मक्का के खेत में ही शुरू हो गई। खोपड़ियों के साथ-साथ भुट्टे भी टूट-टूट कर गिरने लगे। घोड़ों ने सारा खेत रौंद डाला। वीर जूझ-जूझ कर धराशायी होने लगे किन्तु वेगवती नदी की उमड़ती हुई जलधारा की भाँति आगे बढ़ने वाले अंग्रेज़ रिसाले को वे न रोक पाये।

पृथ्वीसिंह लड़ते-लड़ते घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। जब वे अर्द्धचेतन अवस्था में पड़े हुए थे तो ज़ालिम के एक विश्वस्त सिपाही ने ज़ोर से उनकी पीठ में बर्छा मारा। उसके थोड़ी ही देर बाद कर्नल टॉड की नज़र खून से लथपथ पृथ्वीसिंह पर पड़ी। फौरन घोड़ा बढ़ा कर वह उनके पास गया और बोला—"क्या हो गया प्रिंस। हमको बहुत सख्त अफ़सोस है। कहीं ज़्यादा चोट तो नहीं आ गया?"

"मेरा खून इसी मिट्टी में मिल जाने दो साहब बहादुर। बस अब मैं ज़िन्दा रहना नहीं चाहता" पृथ्वीसिंह ने पृथ्वी की धूल अपनी मुट्ठियों में भर ली और धरती पर सिर टेक दिया।

"यह कैसे हो सकता है। हम आपका अभी इलाज करवाता है। टॉड ने घोड़े से उतर कर पृथ्वीसिंह को गोद में उठा लिया, सिपाहियों की सहायता से उन्हें अपने केम्प में भिजवाया। फ़ौजी डाक्टर को आदेश दिया। कि उनका अच्छी तरह इलाज किया जाये। साथ में एक लेफ्टीनेन्ट को उनकी पहरेदारी के लिये भेजा।

युद्ध बन्द हो गया क्योंकि मुक़ाबिले पर अब कोई नहीं था। महाराव किशोरसिंह ने अपने भाई के वियोग में आँसू भरकर पार्वती नदी में घोड़ा डाल दिया। तीन सौ घुड़सवार उनके साथ उतरे। बलवन्त सिंह को ज़ख्मी हालत में खेत से उठाकर उनके साथी अपने गाँव की ओर रवाना हो गये।

महाराव के नदी पार पहुंचते ही झाला की ओर से एक सिपाही की बन्दूक चली किन्तु महाराव की ज़िन्दगी अभी बाक़ी थी। गोली घोड़े के लगी और वह तुरन्त नीचे गिरकर मर गया।

रात भर पृथ्वीसिंह की चिकित्सा होती रही। रात भर अंग्रेज़ डाक्टर उनके सिरहाने बैठा रहा। कर्नल टॉड उनकी हालत डाक्टर से पूछता रहा। प्रातः काल पुनः वह उनके केम्प में आया और डाक्टर को अलग बुलाकर मरीज़ का हाल पूछा। डाक्टर बोला—"हम सारी रात बैठा रहा है। हम पूरी कोशिश कर रहा है लेकिन पृथ्वीसिंह की जान बचना बहुत मुश्किल है।"

इसके बाद टॉड जाकर पृथ्वीसिंह की बग़ल में बैठ गया। उसकी आवाज़ सुनकर पृथ्वीसिंह ने आँखें खोलीं और कहा—"मेरे जीने की कोई उम्मीद नहीं है साहब बहादुर, मेरा अन्त समय आ गया है।"

"हमको बहुत सख्त अफ़सोस है प्रिंस" टॉड ने कहा—"हमारी

पल्टन में से आपके ऊपर किसी ने हमला नहीं किया। फिर आप को इतना चोट कैसे आया ?"

"जब मैं खेत में पड़ा हुआ था तो किसी ने आकर मेरी पीठ में बर्छा मारा और उसे इस तरह घुमाया कि मेरे फेफड़े-जिगर और पेट सब कट चुके हैं। मैं थोड़ी देर का मेहमान हूँ। मैं तो सिर्फ आपको देखने के लिये जी रहा था।"

"प्रिंस, हमारे लायक कोई खिदमत हो तो फरमाइये" टॉड ने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा।

पृथ्वीसिंह ने अपनी बहुमूल्य कटार अंग्रेज को दी और मोतियों की माला गले से तोड़कर उसके हाथ में रख दी। टॉड गद्गद् होकर बोला—"हम राजपूतों का पक्का दोस्त है प्रिंस। हम आपका नाम तवारीख में अमर कर देगा।"

"साहब बहादुर", राजकुमार ने लम्बी साँस लेकर कहा—"मेरे लड़के रामसिंह का ख्याल रखना। यह हमारी आखिरी इच्छा है।"

"हम वादा करता है कि आपके लड़के को पूरी हिफ़ाजत करेगा।"

"धन्यवाद! ईश्वर को धन्यवाद कि उसने मुझे आप जैसा मित्र दिया" हिचकी लेते हुए पृथ्वीसिंह बोले।

टॉड के आँसू भर आये।

निकलती हुई साँस को रोक कर राजकुमार ने फिर कहा—"साहब बहादुर, मेरी पत्नी से कहना कि पृथ्वीसिंह अपने वतन के लिए मर रहा है।"

☆

चौदहवाँ परिच्छेद

कोटे के राजमहल में एक कमरा झाड़ फानूस से सजा हुआ है। अनेक स्वर्गीय राजाओं के चित्र शीशे में मढ़े दीवारों पर टँगे हुए हैं। जहाँ तहाँ युद्ध के चित्र बने हुए हैं। राजसिंहासन पर एक बहुमूल्य शाल ढका हुआ है जिस पर महाराव किशोरसिंह की मखमली सलमेदार जूतियाँ रखी हैं। सिंहासन के ऊपर दीवार पर महाराव किशोरसिंह का भव्य चित्र टँगा हुआ है जिस पर ताज़ फूलों की माला पड़ी हुई है। यह कमरा जनता के लिये संध्या को खुला रहता है जब अनेक व्यक्ति आते हैं और अपनी स्वामीभक्ति और श्रद्धा का परिचय देने के लिये पास आकर महाराव किशोसिंह के चित्र को प्रणाम करके चले जाते हैं।

प्रातः काल इसी कमरे में राजराणा ज़ालिमसिंह कुछ अन्य सरकारी पदाधिकारियों के साथ अपने आसनों पर बैठे राज काज करते हैं। आज भी वे ऐसे ही विषयों पर चर्चा कर रहे हैं। बीच-बीच में महाराव साहब का भी ज़िक्र आ जाता है।

"क्या महाराव साहब का नाथ द्वारे से कोई संदेश नहीं आया राजराणा जी" ठाकुर शिवदानसिंह ने पूछा।

"नहीं ठाकुर साहब, लेकिन पता चला है कि वे अभी कुछ दिन और वहीं बिराजेंगे। राजा हैं। जब इच्छा होगी पधार आयेंगे" ज़ालिम ने कहा—"हम तो उनके आज्ञाकारी सेवक हैं। इस सिंहासन पर ये पादुकायें तब तक धरी रहेंगी जब तक वे वापस पधार कर यहाँ नहीं बिराजते।"

"आप धन्य हैं राजराणा जी" ठाकुर ने कहा—"या तो भगवान राम के भाई भरत ने ही पादुका रख कर राज किया था या फिर आप जैसे स्वामीभक्त दीवान हुए जिन्होंने इस प्रकार शासन किया। तीसरी मिसाल हमें कहीं नहीं मिलती।" ठाकुर का व्यंग छुरी की तरह ज़ालिम के दिल पर पड़ रहा था किन्तु वृद्ध ज़ालिम करते तो क्या करते। अपनी अंधी आँखों से ही यह सब अभिनय कर रहे थे। अनपढ़ और अन्धभक्त जनता में शान्ति रखने के लिये ही यह नाटक रचा गया था।

ठाकुर के व्यंग को पीकर वे बोले—"इस बुढ़ापे में ही यह सब देखना बदा था वर्ना कोटे के स्वामी क्यों मुझसे अप्रसन्न होते और क्यों माँगरोल की लड़ाई होती। जब सिर के बाल पक गये, हाथ पाँव ढीले हो गये, कमर टेढ़ी हो गई, तब ही यह कलंक माथे पर आ लगा। किन्तु मुझे अब भी पूर्ण विश्वास है कि महाराव साहिब स्वयं अपने सलाहकारों से ऊब जायेंगे और अपने आप कोटे पधार आयेंगे।"

"इसी विश्वास पर तो हम काम कर रहे हैं राजराणा जी" ठाकुर ने कहा—"ईश्वर करे वह दिन जल्दी आये जब वे वापस पधारें और फिर हमारे राजा बनें।"

मध्यान्ह होने पर राजराणा अपनी हवेली पर गये। कुछ देर में उन्हें एक पत्र मिला जिसके चारों ओर काली स्याही फिरी हुई थी।

अंधे ज़ालिम को पता चला तो मुंह पर भी स्याही फिर गई। दिल कुछ बैठ सा गया। मुन्शी ने बताया कि गोर्धनदास की लिखावट मालूम होती है। उनकी आज्ञा से उसने पत्र खोला और गम्भीर होकर उसे पढ़ना आरंभ किया। पत्र में लिखा था:—

"पूज्य पिता जी,

सादर चरण स्पर्श। मुझे आपको यह लिखते हुए बहुत दुःख हो रहा है कि आज मेरी माँ चल बसी। मैं यह पत्र लिखकर आपको दुःखी न करता किन्तु मेरी माँ ने उसकी आखिरी इच्छा आपको बता देने के लिये कहा था। उसने कहा था—"मेरे बेटे को मुआफ़ कर देना।"

वह चली गई, हमेशा के लिये चली गई। लेकिन मैं वह कपूत बेटा हूँ जो आज तक अपने पाप का प्रायश्चित कर रहा हूँ। मैं इस क़ाबिल नहीं कि मुआफ़ किया जाऊं और न मैंने आज तक किसी से मुआफ़ी माँगी है। मैं अपना मुंह दुबारा आपको दिखाना नहीं चाहता। बस यह आखिरी खत है। अलविदा!

गोर्धनदास।

राजराणा दिल थाम कर बैठ गये। अतीत की समस्त स्मृतियाँ मस्तिष्क में घूम गईं। गोर्धनदास अब कभी नहीं आयेगा। वह गोर्धनदास जो किसी समय उन्हें अपनी जान से भी प्यारा था। और मन्नी! वह हमेशा के लिये चली गई। कितनी भोली, कितनी खूबसूरत थीं मन्नी! जब वह नाचती थी तो उसके साथ उनका मन भी खुशी से नाचने लगता था। जब वह हँसती थी तो जैसे चमन खिल जाता था। जब वह गाती थी तो फरिश्ते साज़ उठा लेते थे। वातावरण स्तब्ध हो जाता था। उसने जीवन में केवल सुख ही सुख तो दिया था और जीवन के सारे ज़हर को, लोगों के सारे तानों को, सारी आलोचना को, वह अमृत की तरह पी गई थी।

लोग उसके हाथ का पानी तक नहीं पीते थे और वह मुझे मदिरा पिलाती थी, ज़िन्दगी के ज़ख्मों पर मरहम लगाती थी, सिरहाने बैठ कर मेरा सिर दबाती थी। लोगों ने उसकी क़ीमत को नहीं पहचाना और जल भुन कर उसे गालियाँ दीं। ये सब अपमान उसने किसके लिये बर्दाश्त किये? मेरे लिये। और मैं ऐसा कि जिसने उस बेक़सूर को बाहर निकाल दिया—अपने बेटे के साथ। वह बेटा, जिसके बग़ैर मेरी जिन्दगी एक बोझ बन गई। सिर पर गठरी रख कर बेचारी रोती हुई मेरे घर से बाहर चली गई और मैं पत्थर की मूरत बन कर उसे देखता रहा। इस राज्य में उसे दो पग धरती भी न मिली। न जाने बेचारी कहाँ सोई होगी, न जाने कितने दरवाजों की ठोकर खाई होगी। और मैंने उसका कभी हाल तक नहीं पुछवाया।

क्षोभ से ज़ालिम का चित्त भर गया। अंधी आंखों में आँसू डबडबा आय। बड़ी देर तक वे खामोश बैठे रहे। सोचते थे—"आज मन्नी न रही। यहाँ कौन है जो उस ग़रीब पर आँसू बहायेगा, कौन मातमपुर्सी के लिए आएगा। जो अपने बेटे के साथ राज्य के बाहर निकाल दी गई हो उस अभागिनी पर कौन दो आँसू डालेगा।"

सारे दिन राजराणा ने कुछ नहीं खाया। स्नान कर के मौन बैठे रहे जैसे पत्थर बैठा हो। गोर्धनदास का पत्र पढ़ कर सीसोदिनी की भी आँख भर आई। उस के बचपन की तस्वीर आँखों में फिरने लगी—कितना प्यारा बच्चा था, कितना खूबसूरत और कितना समझदार। सारे दिन आँगन में कूदता फिरता था और निगोड़ा सारे दिन कुछ न कुछ खाता ही रहता था, और मन्नी? कितनी सीधी थी बेचारी। अपने सौत के आगे कभी मुँह नहीं खोला। सारी डाँट फटकार चुपचाप सिर नीचा किए सुन लेती थी। कभी कोई चीज नहीं मांगी, कभी कोई शिकायत नहीं की। काश वह मुसलमानी

न होती। रजपूतन अपनी क्रूरता पर पश्चाताप करने लगी और उस ने मन ही मन ईश्वर से अपनी सख्तियों की क्षमा माँगी। फिर अपने वृद्ध पति को सांत्वना देती हुई बोली—"दुनियाँ में कौन हमेशा रहता है। यह शरीर तो चलती-फिरती छाया है। उठिये, अब साँझ हो गई। भोजन कर लीजिए।"

"हाँ, अब साँझ हो गई सीसोदिनी" जालिम ने लम्बी साँस खींच कर कहा "अब जीवन में अँधेरा ही अँधेरा है।"

× × ×

महाराव किशोरसिंह को नाथद्वारे में रहते-रहते कई दिन बीत गये। साथी घुड़सवारों को और उन के घोड़ों को कहाँ तक खाते पिलाते और फिर मुट्ठी भर सेना से वे अंग्रेजों के मित्र जालिम को कैसे परास्त कर सकते थे। माँगरोल की पराजय के बाद उन के मनसूबे ढीले पड़ गए। साथ में युद्ध सामग्री भी काफी कम हो गई। खाना-बदोश की तरह कहाँ तक घूमते फिरते। मजबूर होकर उन्हें सुलह करनी पड़ी और राजराणा की यह शर्त माननी पड़ी कि झाला के आत्मजों को दीवान का पद पुश्तैनी तौर पर मिलता रहेगा या उन्हें आधा राज्य देना पड़ेगा। अपने वीर साथियों को महाराव ने एक-एक कर के विदा किया और साथियों ने वादा किया कि जरूरत पड़ने पर वे फिर अपनी जान देने के लिए हाजिर हो जायेंगे।

कोटा नगरवासियों ने अपने राजा का शानदार स्वागत किया। जैसे हल्दीघाटी में हार कर भी प्रताप को बहुत सम्मान मिला था उसी प्रकार माँगराल की हार ने भी महाराव का नाम सारे राजस्थान में ऊँचा कर दिया। जनता को उन के देशप्रेम पर विश्वास हो गया और उन की वीरता के प्रति श्रद्धा हो गई। सारे नगर में उल्लास छा गया। हाथी घोड़ों के साथ राजा की नगर में सवारी निकली। साँझ को दीप जले। जालिम ने खुशी के इज़हार के लिए आतिशबाजी

चलवाई ।

दूसरे दिन प्रातःकाल महाराव का पुनः राज्याभिषक हुआ। सिंहासन से शाल हटाया गया। मखमली जूतियाँ नीचे उतार कर राजा को पहनाई गईं। महाराव पुनः सिंहासन पर आसीन हुए। राजपुरोहित ने तिलक लगाया। सम्मान के लिए तोपें चलीं। ज़ालिम ने पुनः आगे आ कर शीश झुकाया। सरदारों ने नजराने पेश किये। चँवर ढुलाये गये। पान खिलाया गया। सरदारों को पान सुपारी बाँटी गयी। गणिका का नृत्य हुआ। बधाइयाँ गाई गईं। हजारों नागरिकों ने अपने स्वामी को पुनः सिंहासन पर आसीन देख कर उन की जय बोली और इस प्रकार यह नाटक समाप्त हुआ।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

अम्बाजी इंग्ले अपनी मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ था। उसके स्वामी माधोजी सिंधिया के देहावसान के बाद सिंधिया राज्य की शक्ति का ह्रास आरम्भ हो गया था। अब इंग्ले सिंधिया का प्रतिनिधि न रह कर केवल एक धनाढ्य सेठ के रूप में उज्जैन में अपना कारोबार चला रहा था। लाखों रुपए का लेनदेन था। किन्तु, केवल रुपयों के आवजाव से उस का मन संतुष्ट न था। जिस व्यक्ति के हाथ में बड़े-बड़े राज्यों को मोड़ने की शक्ति रही हो उसे एक पतली सी गद्दी पर बैठ कर रोकड़ खाते भरने में वह आनन्द नहीं आ सकता। रुपए पैसे गिनते-गिनते उस का स्वास्थ्य जवाब दे गया और तोंद फुला कर उस ने खाट पर ही मसनद डाल दी।

चारपाई भी आदमी को पकड़ लेती है। इंग्ले दमे के रोग में घंटों तक उलझता रहता। कभी साँस नीचे तो कभी साँस ऊपर। कभी घुटन, तो कभी धौंकनी की तरह साँस चलना। इसी चक्कर में सूख गया। खाँसी आते ही जीर्ण कंकाल गूँजने लगता और गले की

नसें फूल जातीं। आँखें अफीमची की की तरह चढ़ जातीं। पीकदान नीचे धरा रहता था। अदरक मुँह में रखे रहता था। खट्टी चीज़ दूर रखता था। ठंडा पानी तक पीना मुसीबत था। जीवन के अंतिम दिनों तक अम्बा जी अपने पुराने मित्र जालिम को न भूल पाया। अपना अन्त निकट जान कर उस ने राजराणा को एक पत्र लिखा—

"प्रिय दादा !"

जीवन के अन्तिम क्षणों में आप से क्षमा माँग रहा हूँ। वह दिन कैसे भूल सकता हूँ जब चित्तौड़ की छाया में मैंने आप के साथ विश्वासघात किया था। उस अपराध का पश्चाताप अब तक दिल से नहीं उतरा है। सोचता हूँ कि यदि उस दिन मैंने वह कुकर्म नहीं किया होता तो आज क्या होता। इस बीच में अंग्रेजों की जितनी शक्ति बढ़ी है क्या वह मेवाड़ आप के हाथ में रहते बढ़ सकती थी। रुपए की चकाचौंध ने मुझे अंधा कर दिया और मैं इतनी दूर तक न देख सका। मुझे उस समय अपनी आँखों के आगे सोना ही सोना दीख रहा था। सोना मुझे अवश्य मिल गया। किन्तु इस सोने पर लानत है जिसने देश को पराधीन कर दिया। खैर, जो हुआ सो हुआ। ईश्वर की यही इच्छा थी। जो कुछ मुझे मिला उस का थोड़ा बहुत अब तक बचा है। उस का एक अंश आप को दे कर अपने मन को पापमुक्त करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। पाँच लाख रुपए आप के नाम लिख दिए हैं। इस तुच्छ भेंट को मेरी खातिर स्वीकार कर लेना और मुझे क्षमा कर देना। क्या मैं आशा करूँ कि आप मेरे लड़के की देखभाल और उन्नति का बराबर ध्यान रखेंगे ? मैंने जिन्दगी भर सौदा ही तो किया है और क्या किया है। बस यह आखिरी सौदा है।

अभागा,

अम्बा जी इंग्ले।"

ज़ालिमसिंह को पाँच लाख रुपया मिल गया जिस के एवज़ में उन्होंने इंग्ले के पुत्र को कोटा राज्य में जागीर प्रदान की और सम्मान पूर्वक आश्रय दिया।

× × ×

कर्नल टॉड को राजस्थान की खाक छानते-छानते ग्यारह बरस बीत चुके थे। चारण भाटों से मिलना, उन से उन के पोथी पतरे पढ़वा कर नोट लिखना, किलों में भटकना, मन्दिरों मूर्तियों को देखना, महलों के चित्र तैयार करवाना, राजस्थान का नक़्शा तैयार करना, शिलालेख पढ़वाना, रेगिस्तान की मरीचिका देखना, गाँव-गाँव में घूम-घूम कर लोगों के रीति-रिवाज और परम्परायें मालूम करना, सती माताओं के देवलों को प्रणाम करना और उन की राख अपने सिर पर लगाना, यही टॉड की दिनचर्या रहती थी। हजारों मील का चक्कर काट गया। हजारों लोगों से मिला और हजारों किस्से सुने। उस के अफ़सर उस से बहुत अप्रसन्न रहते थे और शिकायत करते थे कि वह कम्पनी का काम ख़ाक नहीं करता। इधर-उधर घूमता फिरता है। सरकार के उन गुलामों को अहसास तक नहीं होता था कि टॉड विश्व की एक महान जाति का महान इतिहास तैयार कर रहा है। लेकिन वह था कि जिसने अफसरों की ज़रा परवाह नहीं की और अपने महान कार्य में जुटा रहा।

दौरा करते समय एक बार टॉड का कैम्प बूँदी नगर के पास लगा हुआ था। सवेरे की चहचहाती हुई चिड़ियों को वह बड़े चाव से देख रहा था। स्त्रियाँ पानी भरने जा रही थीं। आकाश में हरे-हरे तोते पंक्ति बाँधे उड़ रहे थे। कभी कबूतरों का झुंड शहर से उड़ कर ऊपर मँडराने लगता था।

बूँदी के चारों ओर अरावली की पहाड़ियाँ हैं जहाँ हरे-हरे वृक्ष बड़े सुहावने लगते हैं। प्रातःकाल नर नारी शहर से बाहर लोटे

हाथ में ले-ले कर इधर-उधर घूमने लगते हैं। इस दृश्य को देख कर टॉड अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में था। दूर कैम्प से उसे वे व्यक्ति बुगलों की तरह पर्वत पर विचरते हुए लग रहे थे।

आकाश में झीनी सी कुछ बदलियाँ फैली हुई थीं और कभी-कभी हल्की-हल्की बूंदें झरने लगती थीं। टॉड ने अपनी पोथी खोली और लेखनी सँभाल कर राजस्थान का स्वर्णिम इतिहास लिखने बैठा—"माँगरोल की लड़ाई जालिमसिंह की आखिरी लड़ाई थी। किशोरसिंह नाथद्वारे चला गया। बलवन्तसिंह अपने गाँव गोठड़े लौट गया" टॉड लिखते-लिखते सोच रहा था कि इतनी मेहनत का क्या उसे प्रतिदान नहीं मिलेगा। इतने ही में उस के पास एक दूत पहुँचा जिस ने सलाम करते हुए कहा—"जै राम जी की साहब। आप को बूंदी की राजमाता ने याद फर्माया है।" पत्र उस के हाथ में सौंप दिया।

"बूंदी की राजमाता ने ? हम को ? अच्छा, समझ गया" खुशी से उछल कर टॉड ने कहा—"हम को बहुत आनर किया है। हम अबी हाजिर होता है। हम अबी हाजिर होता है।" पत्र पढ़ कर कर्नल ने जेब में रख लिया। जल्दी से फौजी वर्दी चढ़ाई, किरच बाँधी, तमगे लटकाये, मूँछों पर ताव दिया, शीशे में मुँह देखा, सिर पर टोप रक्खा और घोड़े पर बैठ कर चल दिया।

कहाँ वह दक्कियानूसी राजपूती रनिवास और कहाँ एक शिक्षित अंग्रेज। अनुमति के बिना राजपूतों की स्त्रियों से मिलने के लिये परिन्दा भीनहीं जा सकता था। अलाउद्दीन जैसे सिरफिरे सम्राट को केवल दर्पण में पद्मिनी दिखाई गई थी। फिर एक फिरंगी की क्या मजाल थी जो दाढ़ी मूँछ धारी राजपूत पहरेदारों के रहते भीतर चला जाये। टॉड राजपूतों के रीति रिवाजों से खूब परिचित था। कई बरसों से उसकी यह हवस थी कि वह राजस्थान के किसी रनिवास को जाकर देखे, वहाँ की कामनियों को देखे जिनके पीछे बड़ी-बड़ी सेनायें कट

मरती थीं। एक औरत की लाज बचाने के लिये हजारों औरत आग में कूद जाती थीं।

किन्तु टॉड ने अपनी इच्छा किसी राजपूत के आगे व्यक्त नहीं की थी। कहीं कोई मरने मारने पर उतारू न हो जाये। अतः वह राज-माता की उदारता की मन ही मन प्रशंसा करता हुआ रनिवास के द्वार पर पहुंचा। दो तीन राजपूत सरदारों ने उसका स्वागत किया। एक वृद्धा दासी ने साहब को देखकर अपने दोनों हाथों की मुट्ठियाँ अपने गालों से लगाकर अभिनन्दन किया (बारणे लिये) और अपने साथ उसे भीतर ले गई। एक कमरे में घुसने से पहले उसने टॉड के बूट और मौजे उतरवाये।

कमरे में मखमल की गद्दी वाले लकड़ी के एक तख्ते पर साहब को बिठाया गया। रंग बिरंगी चमकीली सालियाँ और लँहगे पहने कुछ स्त्रियाँ प्रबन्ध कार्य से इधर उधर घूम रही थीं। कोई आँचल सँभालती थी तो कोई हल्की सी मुस्कराहट बिखेर देती थी। कोई बंक दृष्टि से नवागन्तुक की ओर झाँक लेती थी जैसे कोई विचित्र प्राणी अन्दर आ घुसा था। साहब ने अपना टोप उतार कर रख दिया था जिसे दासियाँ बड़ी बेअदबी समझ रही थीं।

एक दासी ठुमकती हुई साहब के पास आई। चाँदी का पानदान खोला—इलायची, सौंप, सिकी हुई धनिये की दाल, लौंग, पान, सुपारी सब उसके आगे किये। अंग्रेज ने एक इलायची उठाकर सम्मान ग्रहण किया। दासी ने टोप की ओर देखकर उसे सिर पर धरने का संकेत किया। टॉड फौरन अपनी भूल पर झेंपा और राजपूतों के क़ायदे का स्मरण करते ही टोप सिर पर धर लिया। कोट के बटन बन्द कर लिये और तन कर बैठ गया।

कुछ ही क्षणों में एक हंसिनी सी श्वेतवस्त्रा प्रौढ़ा गम्भीर गति से आती हुई दिखाई दी। लम्बा क़द, बड़ी-बड़ी विरक्त आँखें, चेहरे पर

तेज और शरीर पर आभूषणरहित आभा। टॉड तुरन्त उठ खड़ा हुआ और नतमस्तक होकर अभिवादन किया। राजमाता ने अभिवादन का उत्तर दिया और पास में उसी तख्ते पर बैठ गई। एक दासी ने चाँदी की थाली पास लाकर धर दी।

राखी का पुनीत पर्व था। कुछ स्त्रियों ने धीमे स्वर में गीत गाना आरम्भ किया। राखी के धागे दोनों हाथों में थाम कर राजमाता ने कहा—"आज के दिन हम अपने भाई के हाथ में राखी बांधती हैं।"

इस सम्मान से टॉड गद्गद् हो गया। कहाँ हजारों भील दूर से आया हुआ एक परदेसी सिपाही और कहाँ एक राजवंशोत्पन्न महिला। आँखें उल्लास और कृतज्ञता से भर आईं—"हम इस इज्जत को कभी नहीं भूल सकता" टॉड ने कहा।

राजमाता ने उसके माथे पर तिलक लगाया, राखी बाँधी और हाथ जोड़कर नमस्कार किया। अंग्रेज ने कहा—"हम इस राखी की बहुत इज्जत करता है। हम आपको अपनी सिस्टर यानी बहिन मानता है। हम इस राखी को अपने साथ इंग्लैण्ड ले जायेगा और हमारी नेशन को बतायेगा कि हिन्दुस्तान का औरत कितना नेक होता है जो हमको अपना भाई समझता है। आपको इसके लिये बहुत-बहुत शुक्रिया।"

"राजस्थान में आकर इंग्लैण्ड क्यों जाते हो भाई? क्या आपको यहाँ अच्छा नहीं लगता" राजमाता ने कहा।

"नहीं यह बात नहीं है। राजस्थान से हमको बहुत मोहब्बत है। हम यहाँ की तवारीख को छापने के लिये इंग्लैण्ड ले जायेगा। सारा सामान अपने कंधे पर लाद कर ले जायेगा। हम भी आर्यन है। हम यूरोप और हिन्दोस्तान को एक फेमिली यानी एक खानदान समझता है। हमको इस मुल्क से बहुत मोहब्बत है" टॉड ने कहा।

"वास्तव में आप जैसे नेक व्यक्ति पर राजस्थान को गर्व है"

राजमाता बोली—"एक दिन ऐसा जरूर आयेगा जब सारी दुनियाँ आपके काम की तारीफ़ करेगी।"

इतने ही में दस वर्षीय बूँदी नरेश रावराजा रामसिंह आ पहुँचे। दोनों हाथ राजपूतनियों की राखियों से लदे हुए थे। कलाई तो कलाई, दोनों भुजायें तक ढकी हुई थीं। पगड़ी पर तुर्रा लगा हुआ था, माथे पर तिलक और कमर में तलवार।

राजा को देखकर टॉड उठ खड़ा हुआ और सिर झुकाकर बोला—"सलाम, रावराजा साहिब।"

"सलाम, साहब बहादुर" अपनी कमर से तलवार निकाल कर उन्होंने कर्नल को दी और कहा—"यह तलवार हमारी दोस्ती की निशानी है।" चतुर राजमाता ने अपने बेटे को पहले ही सिखा रक्खा था।

"क़बूल है, रावराजा साहिब, हमको आपकी दोस्ती क़बूल है।"

राजमाता गम्भीर स्वर में बोली—"मेरा लड़का अभी बच्चा है भाई। हमें सबसे ज़्यादा खतरा बलवन्तसिंह जी से है।"

"आप कोई फिक्र नहीं कीजियेगा" कर्नल ने जवाब दिया। "बलवन्तसिंह वफादार आदमी है और अगर उसने कोई गरबर की तो हम अपने दोस्त ज़ालिमसिंह को बोलकर उसका दिमाग़ ठीक कर देगा।"

"वे कहाँ से ठीक कर देंगे। वे तो खुद उनसे घबराते हैं। क्या आप हमारी मदद नहीं करेंगे?"

"जरूर करेगा" अंग्रेज बोला—"जिस वक्त जरूरत होगा हम अपनी पल्टन भेज देगा। कम्पनी सरकार ने रावराजा साहिब को बूँदी का राजा क़बूल किया है। हम भी उस पर क़ायम रहेगा और बूँदी की पूरी हिफाज़त करेगा।"

"बस इसी वादे की हमें जरूरत है" राजमाता बोली।

"हम वादा करता है। हम अपनी बहिन की बहुत रेस्पेक्ट करता है। हम अपनी जान की बाजी लगा देगा" कर्नल ने छाती पर हाथ रख कर कहा।

"बस तो फिर ठीक है। आइये भोजन करिये।" बड़े-बड़े थाल परसे गये। भली प्रकार से भोज पानी के बाद राजमाता ने अपने भाई को विदा किया।

×

सोलहवाँ परिच्छेद

महाराव किशोरसिंह और राजराणा जालिमसिंह मिल अवश्य गये थे लेकिन माँगरोल की लड़ाई ने जो गाँठ डाल दी थी उसका निकलना बहुत मुश्किल था। जाते-जाते भी जालिम ने उन पर जो गोली चलवाई, वह नहीं लगने पर भी दिल में बैठ गई थी। अब महाराव रहें इस ताक में कि ज़ालिम की जगह कोई और बैठे, चाहे वह उनका लड़का ही क्यों न हो और जालिम रहें इस ताक में कि महाराव की जगह कोई और बैठे, चाहे वह पृथ्वीसिंह का ही लड़का क्यों न हो, क्योंकि किशोरसिंह के तो कोई संतान थी नहीं।

इस गुत्थी में दोनों उलझ रहे थे और इस का हल ढूंढ रहे थे। एक दूसरे से मिलना बन्द था। वृद्ध जालिम उस समय तक इतने बदनाम हो चुके थे कि राजपूत जागीरदार उन के घर जाना भी बदनामी और देशद्रोह समझते थे। केवल अंग्रेजों के सहारे पर राजराणा टिके हुए थे। धीरे-धीरे अनुभवी कूटनीतिज्ञ ने एक नई चिड़िया फँसाई। मुसलमानों को भड़काया। उनके साथ मेल जोल इस आड़े

वक्त में काम आया। उन ने उन से कहा कि एक सूअर की पूँछ मस्जिद में फिकवा कर एकदम शहर मे बलवा मचा दो। तोपखाना तो सारा तुम्हारे ही हाथ में है। पैदलों और घुड़सवारों में भी कुछ मुसलमान हैं। मौक़ा देख कर गढ़ पर धावा बोल देना।

लिहाज़ा मुसलमानों ने आव देखा न ताव, बात की बात में पन्द्रह बीस हिन्दू गली कूचों मे काट दिये और अल्लाहो अकबर का नारा लगाते हुए गढ़ की ओर चले। महाराव ने फौरन दरवाज़े बन्द करवाये और गढ में स्थित कुछ सशस्त्र राजपूत सिपाहियों को तैयार रहने का आदेश दिया।

उधर मुसलमान तोपचियों ने बुर्ज पर रखी तोपों के मुँह राज. के महल की ओर मोड़ दिये परन्तु अकारण ही अपने मालिक के घर पर गोलाबारी शुरू करने की उन की हिम्मत नहीं हुई। इतने में राजपूतों ने बुर्ज पर चढ़कर उन की खबर ली। उन से कहा कि या तो तुम हथियार डाल दो या सब मारे जाओगे। कुछ बन्दी बना लिये गये, और कुछ गढ़ से बाहर उतार दिये गये।

महाराव किशोरसिंह के आगे पुनः संकटपूर्ण स्थिति पैदा हो गई। सारे राज्य में बिजली की तरह यह खबर फैल गई कि महाराव किशोरसिंह गढ़ में पुनः घिर गये हैं। जालिमसिंह चुप्पी साधे बैठे थे किन्तु राजपूतों का रोष मुसलमानों के प्रति उबल पड़ा। एक-एक करके वे गढ़ के भीतर जा पहुँचे। महाराजा बलवन्तसिंह को गोठड़े से बुलवाया गया। रातों-रात कुछ विश्वस्त वीरों को लिये वे घोड़े पर चढ़ कर चल दिये और गढ़ के भीतर आ गये।

मुसलमान दरवाज़े तक आ-आकर 'अल्लाहो अकबर' चिल्लाते थे लेकिन दरवाज़ा तोड़ने की या युद्ध छेड़ने की उन्होंने एकाएक कोशिश नहीं की क्योंकि इस में उन की जान को भी उतना ही खतरा था जितना उनके दुश्मनों की जान को।

जिस दरवाजे के आगे मुसलमान ज्यादा डटे हुए थे उसी जगह बलवन्तसिंह को भेजा गया। प्रातःकाल सूर्य की रक्त किरणों में उनकी नंगी तलवार चमकने लगी। आँखों में शौर्य की चमक थी। मूछें भौंहों से जा मिली थीं। रक्त संचार तेज होने के कारण भुजायें असि संचालन के लिए फड़क रही थीं। उन्होंने देखा कि दरवाजा न केवल बन्द था बल्कि उसकी पीछे ईंटे भी चुनी हुई थीं।

"हटाओ इन ईंटों को" उन्होंने जोर से आदेश दिया "यहाँ ईंटें चुनने का क्या मतलब है ?"

ईंटें हटाई गईं। "खोलो इस दरवाजे को। जहाँ बलवन्तसिंह खड़ा है वह दरवाजा बन्द नहीं रह सकता।"

पहरेदारों ने हाथ जोड़ कर कहा—"हुजूर मुसलमान बाहर खड़े हैं। सरकार का हुकम है कि दरवाजा बन्द रहे।"

"यहाँ की हिफाजत मुझे सौंपी गई है। यहाँ मेरा हुक्म चलेगा। दरवाजे को जल्दी से खोलो।"

दरवाजा खुला। मुसलमानों ने "अल्ला ही अकबर" के नारे लगाये और आगे बढ़े।

"जय चामुण्डा, जय चामुण्डा," की आवाज लगा कर बलवन्त की तलवार चलने लगी। जिस के पड़ी उस के दो टूक होते गए। गर्दन पर पड़ी तो गर्दन उड़ गई, हाथ पर पड़ी तो हाथ उड़ गया, छाती पर पड़ी तो छाती कट गई और ढाल पर पड़ी तो ढाल फूट गई। बिजली की तरह चंद्रहास चारों ओर घूम रही थी। पता ही नहीं चलता था कि कब रोका और कब मारा। दरवाजे में जैसे दहकती हुई आग घूम रही थी। लाशों पर लाशें पट गईं। ढेर लग गया। लोग लाशों पर चढ़-चढ़ कर आने लगे मगर क्या मजाल जो एक परिन्दा भी अन्दर पैर मार जाये। साक्षात् यमराज का रूप धारण किये बलवन्तसिंह जूझ रहे थे। दो घंटे तक तलवार बजती रही।

चीते की तरह आठ-आठ दस-दस हाथ कूद कर वे दुश्मनों का सिर काट लेते थे। यह पता ही नहीं चलता था कि वे कब तो दरवाजे के इस तरफ हैं, कब उस तरफ और कब बीच में। मुसलमान आये और कट गए, आये और कट गये। आखिर निराश होकर बाकी बचे हुए लोग लौट गए। पचासों लाशें आगे बिछी हुई थीं और सारी सड़क पर खून बह रहा था।

बलवन्त की देह से भी खून टपक रहा था। इधर-उधर कई घाव लगे थे। किन्तु दो दिन तक उन्होंने दरवाजा नहीं छोड़ा। चौबीस घंटे दरवाजा खुला रहा लेकिन क्या मजाल जो कोई भीतर आ जाये। विद्रोह उसी दिन उसी समय शान्त हो गया।

बलवन्त को विदा करते समय महाराव किशोरसिंह कुछ देर तक गले लगे रहे और बोले—"काका, आप न होते तो मुसलमानों ने बुरे मौक़े घेरा था। आप ने ही हमारी लाज रक्खी है।"

"लाज रखने वाली तो माँ है। वह जिसकी लाज रक्खे, उस की लाज कौन लूट सकता है।"

× × ×

कर्नल टॉड स्वदेश लौटने की तैयारी कर रहा था। सामान बाँधा जा रहा था। उसके अफसरों ने उस का टिकना मुश्किल कर दिया था। उस का राजपूतों से इतना घुल-मिल कर रहना उन्हें अखरता था। राजराणा झालिमसिंह ने टॉड के रहते अपना काम बना लेने का निश्चय किया और उस के पास जा कर बलवन्तसिंह को समाप्त करवाने की योजना समझाई।

टॉड ने कहा—"हम बलवन्तसिंह का दुश्मन नहीं है। हम उसकी बहादुरी की बहुत तारीफ करता है।"

"लेकिन साहब बहादुर। इस का यह मतलब तो नहीं कि वह अपनी बहादुरी का नाजायज़ फायदा उठाये और इतने आदमियों

को क़त्ल कर दे। उसे इस के इल्ज़ाम में गिरफ्तार किया जाना चाहिये। उस पर मुक़दमा चलना चाहिए और उसे इस की सज़ा मिलनी चाहिये।"

"यह आप की रियासत का केस है" कर्नल ने कहा—"हम इस में दखल देना नहीं चाहता।"

"जी नहीं, बलवन्तसिंह हमारी रियासत का आदमी नहीं है। वह बूँदी का बाशिन्दा है और वहाँ के राजा अभी बच्चे हैं" राजराणा ने कहा—"उन में इतना हौसला कहाँ है कि वे अपने काका को गिरफ्तार कर सकें या उन्हें कोई सज़ा दे सकें। उन्हें तो खुद अपनी गद्दी छिनने का डर बना रहता है।"

"ठीक है। हमारी बहिन ने भी हम को बोला था" टॉड ने उत्तर दिया "और हम ने वादा किया था अगर रियासत को अपनी हिफाज़त के लिए जरूरत हो तो हम हमारा सिपाही भेज सकता है।"

"बस, इसी हिफाज़त की तो हमें जरूरत है" जालिमसिंह ने कहा—"वैसे सिपाही कोटे में भी हैं और बूँदी में भी। लेकिन इन दोनों खानदानों का रिश्ता होने की वजह से यह अच्छा नहीं लगता कि वे अपने रिश्तेदार बलवन्तसिंह पर कोई घात करें। इसीलिए तो हमें इस मामले में कम्पनी सरकार की सहायता की जरूरत है। बलवन्तसिंह तो खुद अपनी मौत साल में एक दिन बुला लेता है।"

"क्या मतलब ?"

"मतलब यह है कि केशवराय पाटन में हर कार्तिक पूर्णिमा को मेला लगता है। बलवन्तसिंह उस दिन उस मन्दिर में अवश्य जाता है। उसे घेरने के लिए वही सब से अच्छी जगह है। आप उसे हत्यारा घोषित कर दीजिए। उस ने नाहक इतने आदमी मारे हैं।"

"लेकिन वो मंदिर तो बहुत पुराना मंदिर है राजराना साहिब" टॉड ने कहा—"हम उस पर गोलाबारी करने का हुक्म हरगिज़ नहीं दे सकता।"

ज़ालिम ने फिर समझाया—"हम कहाँ कहते हैं कि आप उस पर गोलाबारी करें। आप के चन्द सिपाही सादा पोषाक में मंदिर के आस-पास छिपे रहेंगे। बाहर निकलते ही हत्यारे को गोली से उड़ा दिया जाये।"

"नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता। हम तो इंग्लैण्ड जा रहा है।"

"साहब बहादुर, तब तो यह काम और भी आसान है। आप अपने केप्टन से कह दीजिए कि जब हमें सिपाहियों की जरूरत पड़े तो वे फौरन हमारी मदद करें। क्या आप को अपनी बहिन के सामने किया हुआ वादा याद नहीं है।"

"हमें याद है राजराना साहिब। अच्छी तरह याद है। उसी वजह से तो हम आप की बात मानने को राज़ी है, लेकिन हम इस काम को बिल्कुल सीक्रेट यानी पोशीदा रखना माँगता है।"

"बिल्कुल पोशीदा रहेगा। आप कतई फिक्र न कीजिए। आप बेफिक्र होकर इंग्लैण्ड जाइये।"

"अच्छा राजराना साहिब। गुड बाई। हम आप से बहुत खुश है। हम आप का सारा हाल राजस्थान की तवारीख में लिखेगा।"

"बहुत बहुत शुक्रिया, साहिब बहादुर" ज़ालिम ने कहा—"आप जैसे दोस्त पर मैं फ़क्र करता हूँ। आप की याद मेरे दिल में हमेशा ताज़ा रहेगी।"

टॉड ने अपने अधीन केप्टन को बुला कर समझाया। सामान खच्चरों पर लद चुका था। पोथी पतरे, ताम्रपत्र, सिक्के, वंशावलियाँ

चारण भाटों की अनेक पुस्तकें, अंग्रेजी में तैयार किया गया इतिहास, तस्वीरें, नक्शे, मन्दिरों और दुर्गों के चित्र, भ्रमण वृत्तान्त से भरी हुई कापियाँ, सब सामान साथ बँधा हुआ था।

"सलाम, साहिब बहादुर। रास्ते में सँभल कर जाना।"

"सलाम राजराना साहिब, सलाम। हमारी बहिन को भी हमारा सलाम बोल देना" कह कर टॉड घोड़े पर सवार हो गया और रूमाल हिलाता हुआ दूर चला गया। जिस देश की रज-रज को छू कर उस ने इतने वर्ष बिताये थे उसे दुबारा देखने की आस टूट चुकी थी। राजस्थान की एक-एक घाटी और एक-एक खण्डहर उसकी आँखों के आगे घूम रहा था—चित्तौड, रणथम्भोर, जालोर, सब सामने खड़े थे। वीरों की प्रतिमायें हृदय पटल पर उभर आई थीं। गरम रेत उड़-उड़ कर उसे छू रही थी और उस के आँसू बह रहे थे।

सत्रहवाँ परिच्छेद

कार्तिक पूर्णिमा आई। पाटन में मेला लगा। भगवान केशवराय के दर्शन के लिए यात्रियों का ताँता लग गया। बैलगाड़ियाँ खोल कर बैल बाँध दिए गए। चारा डाल दिया गया। घोड़े और ऊँट यत्र तत्र बँधे हुए थे। सवेरे ही अपने परिवार सहित बलवन्तसिंह पाटन के लिए चल पड़े। रथाकार बैलगाड़ी के बैलों की जोड़ी झम-झम झमझम करती, मध्यम गति से दौड़ती हुई दोपहर तक पाटन आ गई। चम्बल के किनारे बैल रुके। सब लोग नीचे उतरे। बैलों को खोला और उन्हें पानी पिलाया। बलवन्त ने नदी में स्नान किया। भगवान् भास्कर को अर्घ्य चढ़ाया। यज्ञोपवीत बदल कर पूजा पाठ किया और मेला देखने तथा भगवान केशवराय के दर्शन करने के लिए चल पड़े।

पचासों सिपाही देहाती पोशाक में इधर-उधर घूम रहे थे। एक गुप्तचर की बलवन्त पर बराबर नज़र थी। उस युग में हथियार साथ रखने का आम रिवाज था। जैसे आजकल लोग नेकटाई बाँधते

हैं वैसे उस समय परसले पड़े होते थे। कमर में तलवार लटकी रहती थी। बगल में छुरी कटारी बँधी रहती थी। अनेक वीर बन्दूकें भी साथ रखते थे।

धीरे-धीरे संध्या हुई। पशु-पक्षी अपने घोंसलों को लौटने लगे। मंदिर में दर्शकों की भीड़ बहुत कम हो गई। आकाश में लालिमा छा गई। ग्रामवासी अपने-अपने घर जाने की तैयारी करने लगे। कुछ बैलगाड़ियाँ चल भी दीं। मन्दिर में भीड़ छंटने पर बलवन्त ने अपने परिवार सहित प्रवेश किया। हाथ-पाँव धोये, मुँह धोया। धीरे-धीरे आगे बढ़ कर केशवराय को प्रणाम किया। पुजारी ने तिलक लगाया, चरणमृत और तुलसीपत्र दिए। लौट कर चले ही थे कि पाँव रुक गए। नाई ने रास्ता काट कर कहा—"बहुत से सिपाही पेड़ों की आड़ में बन्दूकें लिए छिपे बैठे हैं।

बलवन्त ने पुनः मुड़ कर भगवान की ओर देखा। प्रणाम किया, और बोले—"यह तुच्छ शरीर आज आप के ही आगे गिरेगा। इस से बढ़ कर सौभाग्य और क्या हो सकता है।"

फिर उन्होंने अपने लोगों से कहा—"इस मन्दिर के पीछे एक खिड़की है। तुम लोग उस खिड़की से नीचे उतर कर झाड़ियों की आड़ आड़ में बच निकलो। मैं सामने से जाता हूँ। दुश्मनी तो उन की मुझ से है, तुम से तो है नहीं।"

'नहीं दादा! जब तक साँस है तब तक आस है" छोटे भाई शेरसिंह ने कहा—"सौ बार जीता हुआ वीर अगर एक बार बच कर निकल जाये तो वह कायर नहीं कहलाता। भगवान् केशवराय भी जरासन्ध की सेना आने पर मथुरा से द्वारिका पधार गए थे। फिर हम तो तुच्छ मानव हैं। आज का मौक़ा ऐसा ही है कि आप पीछे से गुजर जाओ। मैं सामने से जाता हूँ" उस ने छाती ठोक कर

कहा। शेर की सूरत अपने बड़े भाई से मिलती-जुलती थी। संध्या समय एकाएक पहचानना बहुत मुश्किल था।

किन्तु बलवन्त नहीं माने। बोले—"तुम जवान हो शेर। अपना जीवन इस तरह न खोओ। हम काफी जी लिये। काफी खा लिया, काफी पी लिया। हमारा यही फैसला है कि तुम सब जाओ खिड़की की तरफ से। बलवन्तसिंह दरवाजे से जायेगा।" यह कह कर उन्होंने तलवार खींच ली और आगे बढ़े।

उन्हें बढ़ते देख कर शेरसिंह ने छाती से छाती अड़ा दी और आँसू भर कर कहा—"यह नहीं हो सकता। प्राण रहते दादा! उधर से न जाने दूँगा। मेरी लाश पर भले ही निकलना उधर से। वहाँ लड़ोगे किस से? बन्दूकें हवा में तिर रही हैं। कोई सामने आता तो लड़ते भी। जाओ, खिड़की से नीचे उतर जाओ।" छोटा भाई बड़े भाई को आदेश दे रहा था।

"अच्छा" बलवन्त ने गले लगा कर कहा। गरम-गरम आँसू उन की आँखों से टपक पड़े—"केशवराय की यही इच्छा है। विदा।" वे और उन का लड़का धौंकलसिंह दोनों पीछे की खिड़की से नाई की पगड़ी बाँध कर नीचे उतरे। नाई भी एक तलवार लिए साथ हो गया।

उधर शेरसिंह ने मंदिर-द्वार के समीप आ कर भीतर से ही ललकार मारी—"अरे ज़रा सँभल कर रहना। आ गया बलवन्तसिंह, तुम्हारा बाप" कह कर तलवार म्यान से सूँत कर के बाहर निकल आये और कूद कर सीढ़ियों से नीचे जा खड़े हुए। अपने भाई की तरह सिंहनाद किया—"जय चामुण्डा, जय चामुण्डा।"

"ठाँय, ठाँय" गोलियाँ बरसने लगीं। ज़रा देर में शेर का शरीर

चलनी हो गया। बीसियों गोलियाँ देह को फोड़ कर निकल गईं। किन्तु वे गिरे नहीं। सीढ़ियों के समीप बनी हुई एक छतरी के स्तम्भ को थामे खड़े रहे। भगवान का अन्तिम दर्शन करने और उन के चरणों पर लोटने के लिए ऊपर चले। सीढ़ियों पर चढ़ने लगे। दो तीन सीढ़ी चढ़े ही थे कि घायल शरीर झूलने लगा।

"तलवार चलाने की तमन्ना मन में ही रह गई" कहकर शेरसिंह ने छतरी के स्तम्भ पर ज़ोर से हाथ मारा। पत्थर आधा कट गया। तलवार टूट कर दूर जा पड़ी और शेरसिंह ने वहीं से भगवान् को सिर टेक दिया।* सिपाही खुशी से उछल पड़े। एक दूसरे के निशाने की दाद देने लगे और पीठ ठोकने लगे। बलवन्तसिंह कुछ दूर निकले थे कि नदी की ओर से आता हुआ एक ब्राह्मण उन्हें मिल गया। डर के मारे भीरु पंडित ने हाथ में तिनके उठा लिए और बोला—"धर्मावतार, आप की गाय हूँ। धणी खम्मा पृथ्वीनाथ, अन्नदाता जी।" भय से थर-थर काँपने लगा।

गाय वाय की परवा न कर के उन के पुत्र धौकलसिंह ने कहा "पिताजी, बस यह अपनी मौत जा रही है। इनाम के लालच से यह चापलूस ब्राह्मण अभी जा कर दुश्मन को ख़बर दे देगा।" उस ने तलवार खींच ली।

ब्राह्मण ने बलवन्त के पाँव पकड़ लिये और बोला—"रक्षा करो राजन्! आप की शरण में हूँ। मैं गगा की सौगंध खा कर कहता हूँ कि आप के पधारने का हाल किसी से नहीं कहूँगा।" उसने चरणों में सिर टेक दिया।

---

*जिस स्थान पर शेरसिंह का शरीर गिरा उस के पास की छतरी पर उन की तलवार का निशान अब तक मौजूद है जिस की कार्तिक पूर्णिमा को पूजा होती है।

बलवन्त ने ब्राह्मण को उठाया और अपने पुत्र से बोले—"बेटा, हम क्षत्रिय हैं। हम सदा से गौ, ब्राह्मण और वेद की रक्षा करते आये हैं। इनकी रक्षा करने के लिये यहां की चप्पा-चप्पा ज़मीन हमारे बाप दादों के खून से रगी हुई है। हम मर जायेंगे लेकिन ऐसा पाप कभी नही करेंगे।" ब्राह्मण की ओर देख कर वे बोले—"जाइये महाराज, हमें दुःख है कि हम ने आप को रोका। आप निर्भीकता से चले जाइये।"

"जय हो धर्मावतार की। ईश्वर आप की रक्षा करे। ब्राह्मण का यही आशीर्वाद है। आप जैसे क्षत्रिय पर सारे देश को गर्व है" कह कर पांडे चल दिया।

मदिर तक पहुँचते-पहुँचते पुरस्कार का लालच इतना तीव्र हो गया कि उसके मुंह में पानी भर आया। सोचा खूब रुपया मिलेगा। खूब भंग छनेगी। खूब पेड़े मिलेंगे। जाकर सिपाहियों से बोला—"अरे बेवकूफो, तुम किस खुशी में उछल रहे हो। तुम्हारा बाप तो निकल कर उधर गया नदी की तरफ। यह तो उसका भाई मरा पड़ा है।" सिपाही चौंक पड़े। आँख फाड़-फाड़ कर लाश को देखा। चेहरे पर झुक गये। शेरसिंह था, बलवन्त नहीं था। चेहरे फक रह गये। एक साथ बन्दूकें भरी गईं। झाड़ झंखाड़ की आड़ में खड़ी हुई तोपें खींच कर आगे लाई गईं और नदी के पुल की तरफ मोड़ दी गईं। एक साथ गोलाबारी शुरू हुई। सिपाहियों की बन्दूकें भी कड़कड़ाने लगीं।

दस पन्द्रह मिनिट लगातार तोपें चलने के बाद सिपाही बन्दूकें थामे हुए तेजी से नदी के पुल की ओर बढ़े। पुल के पास पहुँचने पर बलवन्त के बेटे की लाश पड़ी हुई मिली, किन्तु बलवन्त का कहीं पता न था। सिपाही तेजी से चारों ओर दौड़े। एक-एक झाड़ी में संगीनें घोंप डालीं। एक-एक पेड़ पर नजर डाली। एक-एक गड्ढा देख डाला।

तीन चार मील तक का सारा क्षेत्र सिपाहियों के बूटों से रुँद गया किन्तु बलवन्त कहीं न मिले। कई दिनों तक बूंदी और कोटा राज्य में आतंक छाया रहा। सारे पहरेदार और गुप्तचर सतर्क कर दिये गये।

रावराजा रामसिंह और राजराणा जालिमसिंह दोनों बुरी तरह परेशान थे कि यदि कहीं बलवन्त बच गया तो दुश्मनों को बीन-बीन कर मारेगा। लोहे के पिंजरे के चारों ओर सशस्त्र सैनिक तईनात रहते थे। तब जाकर जालिमसिंह पलंग पर लेटते थे।

नदी के किनारे-किनारे काफी छान बीन की गई। कहते हैं कि बहुत ढूँढने पर एक जूते की जोड़ी नदी के पास कहीं मिली जिस से अनुमान होता था कि तेजी से इधर उधर घूमते हुए शायद बलवन्त-सिंह ने अपना अन्त समीप जान कर कोई भारी पत्थर पगड़ी से अपनी छाती पर बाँध कर नदी में छलांग लगाई हो। चर्मनावती में ऐसी घटनायें न जाने कितनी हुई होंगी। फिर भी बलवन्त का निधन एक पहेली बन कर रह गया।

अट्ठारहवाँ परिच्छेद

मोतियाबिन्द उतर आने से कई वर्षों से ज़ालिमसिंह दृष्टि शून्य हो गये थे। तत्कालीन चिकित्सा में आपरेशन द्वारा उसका इलाज करने का कोई विधान नहीं था। किन्तु ज़ालिम की दूरदर्शिता, प्रबन्ध पटुता और सतर्कता में कोई अन्तर नहीं आया। अपने वंश के लिये स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने का स्वप्न पूरा होने की ज़ालिम को पूरी आशा थी और वे अधिकांश कार्य अपने पुत्र माधोसिंह को सौंप कर 'झाला की छावनी' में रहने लगे। अपने राज्य की जड़ें मज़बूत करने लगे।

वृद्ध राजराणा के शत्रु और मित्र दोनों एक-एक करके विदा हो रहे थे। बलवन्त के निधन से उनकी राह का आखिरी काँटा

दूर हो गया। किन्तु राज्य भर में उनकी निन्दा और असहयोग का वातावरण था। बच्चों के साथ खिलवाड़ करना राजराणा को शोभा नही देता था। अतः वे छावनी में ही टिके रहे। कोटा राज्य की बागडोर अन्तिम क्षण तक उनके हाथ में रही। वे चाहते तो उसे छोड सकते थे किन्तु सत्ता हाथ से निकल जाने के बाद उन्हें अपमान का भय था। जिसके हाथ में शक्ति नहीं उसे कौन पूछता है। शक्तिहीन प्राणी बलि के बकरे की तरह होता है। जो चाहे उसे घसीट कर ले जाये और देवी के अर्पण कर दे। इसीलिये उस शक्तिहीन अवस्था मे भी उन्होंने शक्ति को हाथ से न निकलने दिया।

उनकी वृद्ध पत्नी ने स्वर्ग जाने की तैयारी की। मेवाड़ से जालिम का नाता भले ही टूट गया था किन्तु सीसोदिनी का नाता नहीं टूटा था। वहाँ के हाल चाल, स्वजनों और बान्धवों के कुशल क्षेम के समाचार बराबर आते रहते थे। चूँडावत और सक्तावत उसी तरह अपनी अपनी प्रधानता के लिये झगड़ते रहते थे। सीसोदिनी को अंतिम दिन तक यही खेद रहा कि मेवाड़ में भाई से भाई लड़ रहा था। वैभव सम्पन्न अधिक होने के कारण चूँडावतों का पल्ला अधिक भारी रहता था। झाला की छावनी से पास ही चूँडावतों की रामपुरा नामक जागीर थी। पड़ौसियों से झगड़ा मोल लेना राजा के लिये हितकर नहीं होता। अतः मरते समय सीसोदिनी ने पति से कहा कि अपने पोते का विवाह चूँडावतों में करना ताकि उनसे कलह मिट जाये और भविष्य में सम्बन्ध अच्छे रहें।

जालिमसिंह को अपने पोते बापालाल (मदनसिंह) से अत्यधिक स्नेह था। अंधे की लकड़ी की तरह उन्हें सदा साथ रखते और उनके कंधे पर हाथ रख कर चलते थे। मदनसिंह जो भावी राजराणा बनने को थे अपने पितामह की तरह बड़े चतुर और साहसी थे।

अपनी स्वर्गीय पत्नी की इच्छानुसार बापालाल का विवाह चूँडावतों के यहाँ करने के लिये राजराणा उपाय सोचने लगे। रामपुरे के चूँडावतों से सम्बन्ध अच्छे बनाने की कोशिश की जाने लगी। यह वही रामपुरा था जहाँ किसी समय जोधपुर से निर्वासित वीरवर दुर्गादास मेवाड़ के महाराणा राजसिंह के आदेश से सूबेदार का कार्य करते थे। जोधपुर के लिये सारे मुग़ल साम्राज्य से लोहा लेने वाले वीर को जोधपुर में मरने के लिये दो गज़ ज़मीन भी नहीं मिली। भाग्य की कैसी विडम्बना है और मानव की कैसी कृतघ्नता!

अस्तु, चूँडावतों को प्रसन्न करने के तरीके सोचे जाने लगे। राजराणा जालिमसिंह को पता था कि भटवाड़े में वीर गति को प्राप्त हुए उनके निकट साथी महाराजा खुशहालसिंह जी के पौत्र महाराजा छीतरसिंह जी का विवाह रामपुरे के चूँडावतों में हुआ था। बस उन्हीं के जरिये यह काम करवाना श्रेष्ठ था।

अतः उन्होंने एक पत्र लिखवाया। दृष्टिहीन होने पर राजराणा अपने मुन्शी और शिरस्तेदारों को पत्र और आदेश लिखवाते रहते थे। पत्र में लिखवाया कि तुम्हारा और हमारा कई पीढ़ियों का सम्बन्ध है। यदि तुम बापालाल की शादी रामपुरे के चूँडावत की कन्या से करा दो तो तुम्हारी जागीर और बढ़ादी जायेगी और वह पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहेगी। तुम्हारा इस जागीर पर सदा अधिकार रहेगा।× ज़ालिम के व्यवहार से छीतरसिंह जान गये थे कि जागीर का प्रलोभन तो केवल प्रलोभन मात्र था। फिर भी पुरातन सम्बन्ध को ध्यान में रख कर वे अपनी पत्नी सहित ससुराल गये। दस पन्द्रह दिन वहाँ ठहरे और

× इस पत्र की मूल प्रति अब भी उपलब्ध है।

चूँडावतों का सम्बन्ध ज़ालिम के पौत्र से तय कर दिया। बड़े जोर-शोर से बरात चढ़ी। हाथी, घोड़े, ऊँट बलबलाते हुए रामपुरे पहुँचे। राजपूतों ने खुशी के मारे डंडे बजाये। डंडे आपस में खोपड़ियों पर नहीं बजाये अपितु इस बार डंडों से डंडे बजाये। बन्दूकें एक दूसरे की छाती पर नहीं बल्कि हवा में चलीं। तलवारें खुशी से हवा में घूमीं और खूब चमकीं। आतिशबाज़ी, हुक्के, पटाख छोड़े गये। रंडियाँ खूब नाचीं। लाल लाल मदिरा मटकों से निकल कर पेट में भर गई। अंडे, मुर्गे, बकरे काफी तादाद में साफ हो गये। सैंकड़ों मन घी पेट में चला गया। बड़ी धूमधाम से शादी हुई। खुशी के ढोल बजाते हुए राजराणा अपनी पतोहू को घर ले आये। छीतरसिंह को जागीर देने का वादा केवल कागज़ी वादा बन कर रह गया।

राजराणा की अवस्था अब पच्चासी वर्ष की हो चली थी। अपने बाल्यकाल से अब तक वे कोटे के राजसिंहासन पर पाँच राजाओं को आसीन देख चुके थे—महाराव अजीतसिंह, छत्रसाल, गुमानसिंह, उम्मेद सिंह और किशोरसिंह। पाँच राजाओं के होते हुए भी ज़ालिम ने कोटे पर साठ वर्ष तक राज्य किया था। इन साठ वर्षों में उन्होंने न जाने कितने खेल खेले, न जाने कितनों को उखाड़ा, न जाने कितनों को पछाड़ा। एक समय था कि लोग उनके आगे नज़र नहीं उठा पाते थे और अब उनके दृष्टिशून्य होने के कारण यह हालत थी कि उनके ही नौकर उनके आगे मुस्कराते थे, जीभ निकालते थे, दाँत दिखाते थे।

गलितनखदन्त होकर जैसे व्याघ्र एक स्थान पर बैठा बैठा गुर्राता रहता है उसी प्रकार वे अपनी गद्दी पर बैठे बैठे राजकाज चला रहे थे। जीवन के समस्त इन्द्रजाल उनके शून्य नेत्रों के आगे घूमते रहते थे।

अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये उन्होंने क्या नहीं किया। कौन सा उपाय ऐसा था जो उठा न रक्खा हो। जनता से पैसा खींच खींच कर सेना सजाते रहे, युद्ध करते रहे, षडयंत्र रचते रहे, उद्देश्य पूर्ति के लिये ज़मीन आसमान एक करते रहे। अमीर ग़रीब सब को खसोटा। उस नाक कटे चारण का दोहा वे नहीं भूल पाये थे जो अब तक उनके कान में गूँज उठता था—

"ज़ालम जोर्याँ मत करे, दुख पावे छे रेत।
कधीक मरग पधारशो, कुटुम कवीला सेत॥"

न जाने इतिहास उन्हें किस नाम से पुकारेगा। न जाने टॉड क्या लिखेगा? जीवन का सारा हाल उसे बता कर उन्हें राहत अवश्य हुई थी। किन्तु कुकर्मों की याद आने पर वे आँसू भी बहाने लगते थे और उन के अन्धे नेत्र मुरझाये हुए कमलों की तरह जल में डबडबा उठते थे।

कभी आवेश में आने पर सिंधिया, इंग्ले, होल्कर, किशोरसिंह के नाम बड़बड़ाने लगते थे। जिन व्यक्तियों ने उनके जीवन में महत्वपूर्ण भाग लिया था, उनकी सुध उन्हें बार बार आती रहती थी—महाराव छत्रसाल, मल्हारराव होल्कर, अखैराम कायस्थ, सवाई माधोसिंह, महाराव गुमानसिंह, महाराजा स्वरूपसिंह, धाभाई जसकरण, मयूरी चूँडावत भीमसिंह, महाराणा अड़सी, दीवान बरुआ, माधोजी सिंधिया, व्यंबकराव इंग्ले, अम्बा जी इंग्ले, महाराणा हम्मीरसिंह, महाराणा भीमसिंह, रावराजा उम्मेदसिंह, यशवन्तराव होल्कर, कर्नल मानसून, महाराव उम्मेदसिंह, महाराव किशोरसिंह, राजकुमार पृथ्वीसिंह, मन्नी, गोर्धनदास, सीसोदिनी, कर्नल जेम्स टॉड, महराबखाँ, दलेलखाँ, महाराजा बलवन्तसिंह इन सब व्यक्तियों की आकृतियाँ मानो सजीव हो कर

उनके मनस पटल पर चक्कर काटती थीं और वे उनके नाम बड़बड़ाते रहते थे। बैठे बैठे उन्मादी की तरह ऐसे बोलते थे जैसे किसी दूसरे व्यक्ति से बातें कर रहे हों। जीवन की जितनी गोपनीयता थी वह सब रह रह कर अधरों की राह से प्रकट हो चाना चाहती थी। इसी से उन्हें शांति मिलती थी और इसी अवस्था में अपने मित्रों के नाम पुकारते हुए वे एक अँधेरी रात में ऐसे सोये फिर नहीं जागे।